रवीन्द्रनाथ : हिन्दी के दर्पण में

(रवीन्द्रनाथ की कविताओं का भावानुवाद)

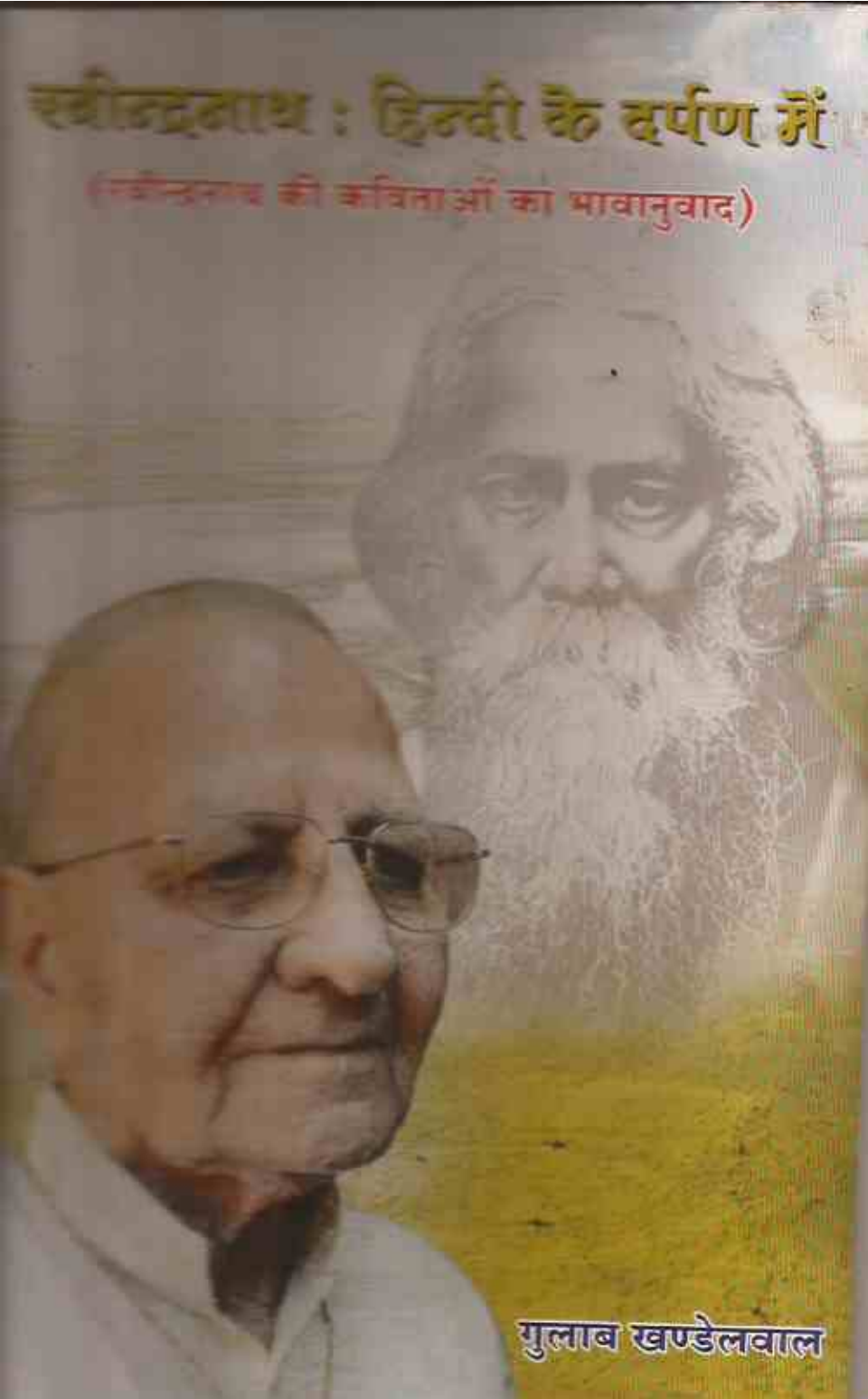

गुलाब खण्डेलवाल

रवीन्द्रनाथ : हिन्दी के दर्पण में

(रवीन्द्रनाथ की कविताओं का भावानुवाद)

गुलाब खंडेलवाल

सर्वाधिकार (C) गुलाब खंडेलवाल

प्रथम संस्करण : २०१३
५०० प्रतियां

प्रकाशक एवं वितरक :

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय
१सी, मदनमोहन बर्मन स्ट्रीट, कोलकाता-७
ई-मेल : kumarsabha@kumarsabha.org
टेलीफेक्स : 033-2268 8215

प्राप्ति स्थान (विदेश में) :

3477 Hunting Run Road
Medina, OHIO-44256 (U.S.A.)
Ph. : 001-330-722-8886

मूल्य :

₹ १५०/- ($ 8 विदेशों में)

ISBN - 978-81-902967-8-6

मुद्रक :

श्रीराम सोनी
हाईमेन कम्प्यूप्रिंट
२, रूपचंद राय स्ट्रीट, कोलकाता-७ (प.बं.)
मोबाइल : ९८३११३८०५०

Ravindranath : Hindi Ke Darpan Mein
(Poetic Translations of Ravindranath's poems)
by : Gulab Khandelwal Price ₹ 150/- ($ 8)

प्रिय बंधु श्यामसुन्दर बगड़िया

को

सप्रेम

अमृतभरा चाँद चमकता था जो गगन में
और भी सुहाना हुआ आकार आम्रवन में
और ही थी शोभा उसकी, घूँघट में पत्तियों के
उतरी नयी दुलहन सी जब चाँदनी भुवन में-

भूमिका

'रवीन्द्रनाथ : हिन्दी के दर्पण में' कृति गुलाब खंडेलवाल की अन्यतम कृति तो हैं ही, अप्रतिम और अद्यतन कृति भी है। हिन्दी काव्यधारा के विकास में 'भारतेन्दु काल' से लेकर अभी तक अनूदित रचनाओं का किसी भी भाषा के साहित्य के विकास में विशिष्ट योगदान सतत चला आ रहा है जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी पाठकों एवं रचनाओं का अंतर्विन्यस्त भावबोध भारतीय संस्कृति के उत्कर्ष का संवेदनशील आधार बनता गया है। इस परम्परा के उत्थान के उत्कर्ष की पृष्ठभूमि में गुलाब खंडेलवाल जैसे यशस्वी रचनाकार जब अनुवादक के रूप में अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "इस प्रकार अनुवादक के रूप में भी मैं सूरदासजी तथा गोस्वामी तुलसीदासजी से लेकर मैथिलीशरणजी, निरालाजी, महादेवीजी, दिनकरजी और बच्चनजी की महान कवि-परम्परा से जुड़ गया हूँ क्योंकि उन सभी ने कवि होते हुए भी कविताओं के अनुवाद का कार्य किया। स्वयं रवीन्द्रनाथ ने भी प्रारम्भिक अवस्था में विद्यापति और कबीर के पदों का अनुवाद किया था", तो वे अनुवाद की परम्परा और अवधारणा दोनों को संपृक्तशः रेखांकित करते हैं। कविताओं के अनुवाद की परम्परा में अन्तर्निहित संवेदना के विकास की परम्परा से रचनाकार का अंतर्भूत सत्य जुड़ जाता है, फलतः रचना और रचनाकार के युग का दर्शन एक वैश्विक अभिव्यक्ति का तानाबाना सिद्ध होने लगता है। गुलाबजी ने इसी सिद्धि को कविता का सत्य कहा है और उसी सत्य की खोज में ही उन्हें शिवम् और सुन्दरम् के अनुभूत रहस्य का अर्थ मिल जाता है, फलतः उन्होंने इसी परम्परा की देन को दुनिया के महानतम कवियों की पृष्ठभूमि में अपने कृतित्व के समक्ष समर्पित किया, अन्यथा रचनाकार की

सृजनात्मक दिशा युगनिरपेक्ष हो जाती और रचना युग का दर्पण होने की दिशा से विरत हो जाती या फिर भटक जाती। इस परिप्रेक्ष्य में 'रवीन्द्रनाथ : हिन्दी के दर्पण में' में कवि की यह आश्वस्ति, ''इन लहरों से मैं खेलूँगा अब तेरी नौका लेकर'' के आकार में साकार तो हुई ही है, निर्मेय रूप में प्रामाणिक उपपत्ति भी सिद्ध हुई है।

वस्तुतः गुलाबजी ने जिस कालावधि में अपना रचना संसार अवतरित किया, उसमें पुनर्जागरण का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इतिहास के गर्भ में जितने पुनर्जागरण काल समाविष्ट हैं, उन सबमें दो संस्कृतियों की टकराहट की अनुगूँज सुनाई देती है। चाहे मध्यकाल हो या आधुनिक काल, दोनों में इन दोंनों संस्कृतियों की टकराहट हुई फलतः हिन्दी साहित्य में भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक आन्दोलनों के परिप्रेक्ष्य में एक ऐसी नवीन संस्कृति का अभ्युदय हुआ जिसमें दो भाषाओं के साहित्य के परस्पर अनुवाद का नवविहान अन्तर्निहित है। प्रसिद्ध समीक्षक आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इस अनुवाद के इतिहास को सांस्कृतिक अंतर्संबंधों के इतिहास का परिणाम माना है। भारतीय दर्शन और सन्दर्भों की बुनावट के फलस्वरूप संस्कृतियों की इस टकराहट से निष्पन्न भारतीय साहित्य ही नहीं, अंग्रेजी साहित्य की चिन्तन परम्परा भी आंदोलित हुई, फलतः विश्व का एक नयी दिशा में आगे बढ़ने का पथ प्रशस्त हुआ। यह सच है कि रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि और इमर्सन की रचनाओं पर उपनिषदों का प्रभाव समान स्तर पर दिखाई पड़ता है जिसमें हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक उत्कर्ष के प्रभावशाली महत्व का विश्लेषण भारतीय काव्यधारा के चिंतकों ने अंतर्विन्यस्त देख कर किया और तत्कालीन रचनाओं में विश्व क्षितिज को आकार देने में रुचि दिखाई। फिर भी धर्म और अध्यात्म के सहारे उसमें जिस सांस्कृतिक ऊर्जा का समावेश हुआ उससे विश्व साहित्य को नयी आधार शिला मिली, जिस पर उत्कीर्ण परिस्थितियाँ दुगुने वेग से मानवता के उत्कर्ष को आकार देने के लिए ज़द्दोज़हद करती महसूस की जाने लगीं और काव्य भाषा के क्षेत्र में एक नए युग का पदार्पण होता दिखाई

पड़ने लगा। इसी नए युग की खोज रवीन्द्रनाथ का भी पाथेय बना और गुलाब खंडेलवाल जैसे कवियों का चिन्तनसिद्ध धरातल भी। गुलाबजी की यह स्वीकारोक्ति, इसी अवधारणा की पुष्टि भी करती है और कविता के विकास की पृष्ठभूमि के अभिव्यक्त सत्य का आभास भी कराती है जिसमें तत्कालीन समाज की इतिवृत्ति की संकल्पना का सूत्रपात समाविष्ट है।

आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी इन्हीं परिस्थितियों के परिवेशजन्य घटनाक्रम के परिप्रेक्ष्य में सत्यापित करते हुए कहते हैं, "मध्यकाल में जिन परिस्थितियों का संपर्क हुआ, वे अपनी मूल प्रकृति में एक दूसरे से सदृश थीं। इसलिए सैनिक टकराहट का विकराल रूप इस काल में देखने को मिलता है पर सांस्कृतिक टकराहट का रचनात्मक रूप नहीं। आधुनिक काल में भारत भूमि पर सम्पर्कित होने वाली दोनों संस्कृतियाँ एक दूसरे से विसदृश थीं। योरोपीय संस्कृति नयी वैज्ञानिक सभ्यता और चिंतनधारा पर आधारित थी जबकि पारम्परिक भारतीय संस्कृति धर्म और अध्यात्म प्रधान थी। इस टकराहट से विशिष्ट सांस्कृतिक ऊर्जा उत्पन्न हुई जिसे हम भारतीय नवजागरण का नाम देते हैं। इस टकराहट का प्रभाव दूसरे पक्ष पर भी पड़ा जिसे इस रूप में विचारकों ने अभी कम पहचाना है। बीसवीं शती के अंग्रेजी साहित्य में रवि ठाकुर की अंग्रेजी 'गीतांजलि' के भूमिकालेखक यीट्स (मुख्य रचनाकाल १९-२०वीं शती के संधि वर्ष) की काव्यकृतियों में भारतीय साधना के तत्व, इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतियों पर उपनिषद् के चिंतन का प्रभाव, भारतीय दर्शन और सन्दर्भों की बुनावट यह भलीभाँति प्रदर्शित करती है कि संस्कृतियों की इस टकराहट से अंग्रेजी साहित्य और चिंतन परम्परा ने भी अपने को समृद्ध बनाया है।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.९७)

इस प्रकार समसामयिक समीक्षकों ने 'गीतांजलि' और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कृतित्व के परिप्रेक्ष्य में साहित्य के युगीन विकास के अथ-इति की प्रक्रिया को रेखांकित किया है। इस सन्दर्भ में गुलाबजी की रचनाओं में अन्तर्निहित चिंतन प्रक्रिया में ही साहित्य और संस्कृति के समानांतर सामाजिक

विकास की प्रक्रिया का अंतर्भाव व्यंजित हुआ है। अपनी इस अभ्यासजन्य अभिव्यक्ति के आधार पर ही उन्होंने रवीन्द्रनाथ के गीतों के अनुवाद के समय चयन का एक नया आयाम निर्मित किया और कविजन्य स्वतंत्रता का लाभ उठाते हुए रवीन्द्रनाथ की उन्हीं कविताओं को अनुवाद के लिए चयनित किया है जो उन्हें बहुत प्रिय थीं।

यों तो उन्होंने टैगोर की सभी रचनाओं के प्रति सहज प्रेमाभिव्यक्ति दर्शाई है लेकिन प्रिय कहकर उन्होंने 'रवीन्द्रनाथ : हिन्दी के दर्पण में' को और अधिक महत्वपूर्ण इस मायने में बना दिया है कि सम्पूर्ण युग को आच्छादित किये रहनेवाले इस कवि के काव्य को गुलाबजी ने सन्निकट से जिया भी है और सिया भी है। उनकी मान्यता है, "अमेरिका आने पर मैंने रवीन्द्रनाथ की कुछ अन्य रचनाओं का भी, जो मुझे प्रिय थीं अनुवाद कर डाला।" (अपनी ओर से)

ध्यातव्य है कि गुलाबजी ने गुरुदेव की कविताओं की चयनपद्धति में शैलीविधान और भाषिक सौन्दर्य को विशेष महत्व दिया अन्यथा वे भावानुवाद को महत्व देते हुए अनुवाद को शब्दानुवाद की परिधि में समेटकर इतिश्री मान लेते जैसा कि प्रायः अनुवादक किया करते हैं। गुलाब खंडेलवाल ने भावानुवाद के साथ लिप्यन्तरण को भी अनुवाद का हिस्सा मानकर अनुवाद क्रिया को समग्रता की दृष्टि से देखने की जोखिम भी उठाई और बीसवीं शती के सबसे बड़े कवि की काव्य प्रक्रिया को जटिलताओं की पेचीदगियों से मुक्त रखकर पाठकों को समझने का नया रास्ता ईजाद किया। भाषा की जटिलता का आशय यदि शब्द की जटिलता ही मानें तो निश्चय ही किसी भी रचनाकार की कृति में प्रविष्ट होने के लिए अनुवादक को देश-काल, समाज-संस्कृति को अनूदित अर्थ में अवतरित करने के लिए छंदयोजना और वर्णविन्यास की परम्परागत प्रकृति से टकराना पड़ता है और स्रोतभाषा के उपादान कारण को समझे बिना आगे बढ़ना पग-पग पर कठिन हो जाता है। लक्ष्यभाषा की सरलता और सहजता को काव्य रचना की प्रक्रिया में बदलना तभी संभव हो

पाता है जबकि स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा में निमित्त कारणरूपी संवेदना का समानांतर प्रवाह दोनों में रचना का व्यापार बन जाय तथा साधारणीकरण की शक्ति का अभियान अभिव्यक्ति की प्रकृति के रूप में हृदय और बुद्धि दोनों का विषय बनकर आंदोलित करने का सहज गुण अर्जित कर ले। गुलाबजी तादात्म्य को आकार देते समय पूरी चतुराई से प्रमाता को उबारने के लिए एक मार्ग निर्मित करते चलते हैं, फलतः बंगला के छंदों को भी हिन्दी के छंदों के सहारे पाठक के हृदय में उतार देने का सफल प्रयास करते हैं, इसके लिए वे काव्य-पाठकों के लिए जो निम्नलिखित रणनीति तय करते हैं, वह दिलचस्प तो है ही बोधगम्यता की दृष्टि से बहुत उपयोगी भी है।

"रवीन्द्रनाथ की छंदविधा का अनुसरण करते हुए भी हिन्दी की छंदयोजना, भाव, तुक और अभिव्यक्ति की भिन्नता मुझे पग पग पर भिन्न मार्ग पर ले जाती रही है। इन कविताओं के अनुवाद में मेरा सदा यह ध्यान रहा है कि मेरी रचनाएँ पढ़ी जाने पर उनमें अनुवाद तो क्या, भावानुवाद होने का भी बोध न हो और वे स्वतंत्र कविता का पूरा आनंद दें। पाठक भूल जाय कि वह कोई अनुवाद पढ़ रहा है। इसके लिए मुझे तुक और अभिव्यक्ति ही नहीं, तदनुकूल छंदविधान भी ढूँढना पड़ा है और नयी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ भी लानी पड़ी हैं। यही नहीं, रवीन्द्रनाथ के बँगला छंदों को भी हिन्दी के वर्णिक छंदों का सहारा लेकर हिन्दी में उतारने का भी कई स्थान पर मैंने प्रयास किया है।" (अपनी ओर से)

यह सच है कि इस पुस्तक में संकलित सभी कविताएँ यों तो बहुपठित और बहुश्रुत हैं जिन्हें सर्वाधिक महत्त्व मिलता आया है, बंगाल में भी और बंगाल के बाहर भी, तथापि रचना के स्वरूप और आकार की दृष्टि से 'शिवाजीउत्सव', 'भैरवीगान', 'शाहजहाँ', 'अशेष', 'स्वर्ग सेइ विदाय' आदि उनकी कुछ ऐसी कविताएँ हैं जो या तो आख्यानप्रधान हैं या फिर कथ्यप्रधान शिल्प का दृष्टांत बन गयी हैं जिनके कारण ही वे भारतीय साहित्य का गौरव-गान सिद्ध होने लगती हैं। इन रचनाओं में प्रबंधत्व और मुक्तकत्व

का संयोजित शिल्प संपृक्त है जबकि 'जनगण मन', 'आमार सोनार बांग्ला', 'एकदा तूमि प्रिये', 'आवर्तन' आदि ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें बंगला की मिठास पानी में मिश्री की तरह घुलकर हिन्दी में उतर आई है। इन कविताओं की लघुता जितनी विराटता का बोध कराती है, उतनी ही अनुपात में लम्बी कविताओं की विराटता सूक्ष्मता का बोध कराती है। गुलाबजी ने इन दोनों प्रकारों की कविताओं को हिन्दी की सुगंध में बोरकर प्रस्तुत किया है जिसकी वजह से बंगला और हिन्दी की महिमा की बयार एक साथ रचना से बहकर सबके हृदय को रससिक्त कर देती है। कविता में समाहित आर्द्रता पाठक के मन को मोहने में पूर्णत: समर्थ है तभी तो गुलाबजी का कविमन मोर-सदृश थिरक उठता है और वे यह कहने के लिए विवश हो उठते हैं, "सच्ची बात तो यह है कि रवीन्द्रनाथ की जो भी कविता पढ़िए, उसकी सुन्दरता मन को मोह लेती है और उसे अपने शब्दों में उतारने की इच्छा स्वत: जाग उठती है।"

'जनगण मन' का अनुवाद करते समय गुलाबजी ने सरलतम शब्दों का सहारा लिया है और असामासिक शब्दों के माध्यम से जन जन तक हिन्दी भाषा भाषियों को उसमें समाहित आध्यात्मिक आनंद के हेतु के रूप में सहज वर्णविन्यास किया है। 'आमार सोनार बांग्ला' में कवि की चिंतन दृष्टि बंगाल को भारतमाता के प्रतीक के रूप में देखने पर केन्द्रित है। वह समग्रता में व्यक्ति और समाज दोनों की विराटता का आभास कराती है और मानववादी परिप्रेक्ष्य में "वसुधैव कुटुम्बकम्" का अलख जगाती है। फलत: रवीन्द्रनाथ टैगोर की समग्र दृष्टि के समानान्तर अनुवादक कवि गुलाबजी ने भी गुरुदेव के आशीर्वादस्वरूप इस कविता को राष्ट्र के नवविहान के सूर्य का प्रदीप्त क्षितिज मानकर शिरोधार्य किया है और उनके जन्म की १५०वीं वर्षगाँठ के बहाने स्तवन किया है- "रवीन्द्रनाथ के जन्म की १५०वीं जयन्ती पर उनकी विराट वाटिका से लाये हुए २६ फूलों की यह माला गूँथकर उनके चरणों में अर्पित करते हुए आज मुझे संतोष और हर्ष का अनुभव हो रहा है, इतने महान व्यक्ति के साथ जुड़ जाने में कुछ कुछ गर्व का भी। इस काव्यांतर में मुझे गुरुदेव का

आशीर्वाद भी निरंतर मिलता रहा है, अन्यथा इस रूप में यह कार्य कभी पूरा नहीं हो पाता।" (अपनी ओर से)

इस संकलन में श्री गुलाबजी खंडेलवाल ने राष्ट्रीय, उद्दाम और नैसर्गिक प्रेम के अनेक क्षणों को समेटने का प्रयास किया है जिसकी वजह से उनके पसंदीदा गीतों की भावात्मक व्याख्या के समानांतर उनकी भावना की प्रवाहित धारा भी अनुवाद में मिलती चलती है। रवीन्द्रनाथ की लम्बी कविता 'शिवाजी उत्सव' और 'शाहजहाँ' में ओज और माधुर्य गुणों का अतिरेक नहीं मिलता है अपितु अपेक्षित अनुपात में दोनों भावों की स्वाभाविक उँचाई मिलती है। दोनों में ही बंगला के माधुर्य से मुखातिब हिन्दी के सर्जित छंदो में गुलाबजी कहीं तो रवीन्द्रनाथ के गीतों के प्रवाहधर्म से बाजी मारकर आगे चल देते हैं और कहीं उनके गीतों में डूबकर अनंत सृष्टि की गहराई नापने में तल्लीन हो जाते हैं। ऐसे स्थलों पर वे गीत में कथ्य और तथ्य के सूत्र को संवेदना से सहेज कर नियंत्रित करते हैं और परुष शब्दों के साथ मधुर वर्णों को इस तरह सजा कर रख देते हैं कि आस्वादक गीतों के साथा मस्ती में उन्मत्त भाव से झूमने सा लगता है। उर्वशी के व्यक्तित्व-चित्रण में रवीन्द्रनाथ और गुलाबजी की भाव लहरियाँ एक धरातल पर प्रकट होती हैं –

"युग-युगांतर से अखिल विश्व की रही हो तुम्हीं प्रेयसी
हे अपूर्व सुन्दरी उर्वशी"

यहाँ अखिल विश्व की परिकल्पना की अल्पना में शिव के सत्य और सुन्दर का आभास मिलता है जिसके कारण कोई भी रचना माहेश्वर सूत्र की भाँति जगत की महानता की आकाशगंगा लगती है। सृष्टि की अनुपम सुन्दरी उर्वशी की गुणसम्पन्नता में नगीने की भाँति जड़ी प्रियता, रवीन्द्रनाथ की कोमलता की जगह उर्जस्विता के प्रवाह में अभिव्यक्त छटा, भावशबलता से कहीं ज्यादा भावप्रबलता लगती है। विरोधों के सामंजस्य में विश्वास करनेवाले आई.ए. रिचर्ड्स के समानांतर उक्तिवैचित्र्य को काव्यरचना का प्रमुख तत्त्व

निरूपित करनेवाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सौन्दर्य और संघर्ष की जमीन पर कविता के उदय को महत्त्व इसलिए दिया है कि इनमें एक दूसरे के आमने सामने खड़े होने की, चुनौती को स्वीकार करने की ताकत है। जिस तरह की अनुवाद प्रक्रिया में गुलाबजी ने रवीन्द्रनाथ के गीतों को प्रश्रय देते हुए उनमें अन्तर्निहित भावों को गुदगुदाकर उभारने का युक्तियुक्त कौशल हासिल किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। गुलाबजी के गीत बोलते नहीं बल्कि मौन रहकर वेदना को उद्दीप्त करते हैं और रोमांटिक वातावरण गढ़कर उसमें समाहित सौन्दर्यलहरी का उत्कीर्णन करते हैं जबकि रवीन्द्रनाथ के गीत मुखर होकर मितभाषिता को सलीके से प्रेमाभिभूत नारी की कोमल अँगुलियोंसदृश बल से खिसकाकर आहिस्ता-आहिस्ता दूर कर देते हैं। किसी बंगाली बाला की खिलखिलाहट में सिमटी गीतों की पद भंगिमा की भाँति ब्रज की 'मीठी लगै अँखियाँन लुनाई' का रागात्मक सौंदर्य दोनों भाषाओं में पलते बढ़ते आनंद की तरह मूल रचना और अनुवाद को आमने सामने मुस्कुराते छंदों में देखना बंगला और हिन्दी के काव्य सौन्दर्य की अपनी-अपनी प्रकृति है जिससे ही इन दोनों भाषाओं की पहचान निर्मित होती है और उससे ही इन दोनों भाषाओं की पहचान चिन्हित भी होती है। इस दृष्टि से भी रवीन्द्रनाथ की मूल रचना और गुलाबजी की अनूदित रचनाओं का आनंद लेते लेते सौन्दर्य सागर में कहीं गहरे उतरकर पाठक डूब जाता है।

'शिवाजी उत्सव' कविता में रवीन्द्रनाथ की चुनौती में जो तेवर अंतर्विन्यस्त है वही तेवर गुलाबजी के अनुवाद में अवतरित हुआ है, पर अंतर है तो अभिव्यक्ति की भाषा से निःसृत चोटिल व्यंजना का –

रवीन्द्रनाथ –
माराठिर साथे आजि, हे बांगाली, एक कण्ठे बोलो
'जयतु शिवाजी'
माराठिर साथे आजि, हे बांगाली, एक संगे चलो
महोत्सवे साजि

आजि एक सभातले भारतेर पश्चिम-पूरब
दक्षिणे उ बामे
एकत्रे करुक भोग एकसाथे एकटि गौरव
एक पूण्य नामे

गुलाबजी –

सुर में सुर मिलाकर मराठों के बंगवासी आज
बोलो शिवाजी की जय-जयकार,
उनके ही पग से पग मिलाकर चलो साथ-साथ
करने दासता का तिमिर पार
आज एक साथ जुटें भारत के लोग सभी
पूरब, पश्चिम, दक्षिण और वाम,
एक साथ भोग करें सुख-दु:ख का, गौरव से
लेते हुए वही पुण्य नाम

'एक कंठे' के अनुवाद के लिए 'सुर में सुर मिलाकर' थोड़ा कमजोर पड़ता है क्योंकि कंठ में कविता की तासीर ओजस्विता का भाव व्यंजित करती है जबकि सुर में सुर मिलाने में सुकुमारता का। ऐसे में अनुवादक का यह कहना कि कविता में भावानुवाद है, उसके बचाव में सहायक की भूमिका अदा करता है। यों तो गुलाबजी ने अनुवाद करने की प्रेरणा का श्रेय श्रीमैथिलीशरण गुप्त को दिया है तो भी उनके अनुवाद की प्रक्रिया में समग्ररूपेण अथवा कहीं न कहीं हाशिये पर रवीन्द्रनाथ के जीवनदर्शन की प्रेरणा प्रमुख भूमिका अदा करती है, उन्होंने लिखा भी है –

"जब मेरी पहली काव्यपुस्तक प्रकाशित हुई थी तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त ने मुझसे कहा था, 'यदि आपको कभी कविता के लिए कोई प्रेरणा न प्रतीत हो और न कोई नया विषय ही सूझे तो किसी बड़ी काव्यरचना का अनुवाद करने लग जाइयेगा। मैंने अपने जीवन में यही किया

है।' उनके सदुपदेश पर अमल करने की बारी पहली बार सन् २०१२ में, अर्थात् ७२ वर्षों बाद ही आयी जब मैंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कुछ रचनाओं का हिन्दी में यह अनुवाद किया। परन्तु यह भावानुवाद है और कई जगह पर मैं पथ से बहक भी गया हूँ। कवि अच्छा अनुवादक होता भी नहीं है क्योंकि उसके निजी भावोच्छ्वास पग-पग पर उसे भटका देते हैं। इसलिए मेरे अनुवाद को भावानुवाद ही समझना चाहिए। इसमें जहाँ आपको कोई त्रुटि दिखाई दे, समझ लीजियेगा वह मेरे ही कारण है। (अपनी ओर से)"

अनुवादक और कवि की यह स्पष्टवादिता उसके अनुभूत सत्य को प्रभावित करती है पर भावानुवाद में विभिन्न कोनों से कविगुरु की अनुभूतियों को अपने लोकजीवन के अनुभव के प्रवाह में कहीं ज्यादा खोकर कविता के शब्दविधान में वह स्वतन्त्र हो आया है जिसकी वज़ह से अनुवाद अनुवाद न रहकर वह कुछ और हो गया है जिसके सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं स्पष्ट किया है, 'उमर खय्याम' नामक अपनी कविता भी मैंने अनुवाद के रूप में नहीं, उमर खय्याम के चरित्र-चित्रण के रूप में लिखी थी।

इस तरह की स्थितियाँ अनुवाद में मूल संवेदना से अनुवादक को दूर कर देती हैं जिसकी महत्ता एक दूसरी कविता के रूप में स्थापित होती है न कि अनूदित रचना के रूप में। गुलाबजी ने रवीन्द्रनाथ की छंद विधा का हू-ब-हू सहारा न लेकर अपनी शैली में भाव को व्यक्त किया है जिसे वे हिन्दी की छंदयोजना, भाव, तुक और अभिव्यक्ति की भिन्नता बताकर पग पग पर भटकने से आगाह करते हैं, किन्तु इस आगाह के बावजूद रचना में वे ईमानदारी से शिरकत करते हैं और अनुवाद प्रक्रिया से गुज़रते हर तरह की संभावित जोखिम से उबरते चले जाते हैं। उनकी रचनादृष्टि स्वयं के अनुभवों के इशारे पर काम करती चलती है, अन्य रचनाकार के भावात्मक उन्माद से रास्ता बचाने की विवशता उनमें नहीं है। अनुवाद की बोझिलता से पाठकों को बचाने के लिए ही उन्होंने जगह-जगह पर नए छंदविधान को अपना पाथेय बना लिया है जिससे उनका अनुवाद स्वयं में एक कविता का आकार ग्रहण कर लेता

है जिसके लिए उन्होंने अपने काव्य से मिलनेवाले आनंद को रवीन्द्रनाथ की कविता से मिलनेवाले आनंद से अलगाने का प्रयत्न किया है जो रचनाकार के सृजन का लक्ष्य बनकर निर्मित होता है और जिसकी घोषणा उन्होंने प्रारम्भ में ही कर दी थी।

भावानुवाद में कवि ने स्वतन्त्र ढर्रे पर कविता का नया वितान बनाया है। उसीको उन्होंने अपने समीक्षा सिद्धांत के बल पर अभिव्यक्ति की तलाश और उसके लिए नए छंदविधान की आवश्यकता को काव्य का अनिवार्य तत्त्व मान लिया है। वस्तुत: कविता में जब छंदविधान अपने भाव को सहेजने समेटने में असमर्थ हो जाता है तो सागर की लहर की भाँति हृदय में उठती ऊर्मियों के सहारे उच्छलित होकर काव्य सुषमा सदृश कविता का आकार ग्रहण कर लेता है। यही उच्छलन ही कविता में भावना का विस्तार बन जाती है और क्षितिज को स्पर्श करने के लिए उठती वेदना की भाँति कविता में आकाश चूमने की ललक-सी पैदा होने लगती है और पानी के छींटों की भाँति उसमें एक नई ऊँचाई प्रतीत होने लगती है। गुलाबजी ने उस ऊँचाई को भावलहरियों से जन्मी कविता की नवीन अभिव्यक्ति का कारण माना है जिसके अनुसार छंदविधान में अँटते उसके उत्फुल्ल दुकूल को जीवन की भाँति उन्होंने अपनी काव्यसृष्टि का उपादान कारक बताया है। उनकी प्रिय कविता 'अशेष' में इसका स्वरूप देखा जा सकता है—

आबार आह्वान
यत किछू छिलो काज
सांग तो करेछी आज
दीर्घ दिनमान।

चार पंक्तियों में इस बंगला सृष्टि का अनुवाद उन्होंने छह पंक्तियों में करके हिन्दी की अश्लिष्ट विकसित भाषा वृत्ति के सहारे नए आकार में ढाल दिया है जिससे कविता की पंक्तियों में तरंगायित अंतर्विन्यस्त संवेदना नए स्वरूप में और अधिक मधुर बन गयी है —

कार्य जो दिए थे कभी,
पूरा कर चुका मैं सभी।
दिन भर खट भूत के समान
मुक्ति को विकल हैं प्राण,
डूब रहा अंशुमान,
अब भी यह तुम्हारा आह्वान!

मूल कविता में 'दिन भर खट भूत के समान' का स्थान नहीं है, फिर भी कविता में भाव विस्तार के लिए कवि ने अतिरिक्त कल्पना से ढालकर 'कार्य जो दिए थे कभी' के पूरक भाव को व्यंजित किया है जिसका प्रभाव परवर्ती बंगला वाक्य 'सांग तो करेछी आज, दीर्घ दिनमान' पर दीखता है और अनुवाद प्रक्रिया में वह 'मुक्ति को विकल हैं प्राण, डूब रहा अंशुमान' के जरिये 'अब भी यह तुम्हारा आह्वान!' की वेदना से जुड़ जाता है, 'आबार आह्वान' से प्रारम्भ मूल कविता से दूर होकर अनुवाद में काव्यांत बनकर कसमसाते भावों की माँग की प्रकृति में सहायक होकर नवीन अर्थ की सृष्टि करता है और काव्य की अंतर्बाह्य (डीप एंड सरफेस स्ट्रक्चर) संरचना को उभारने में सक्षम हो गया है। रचनाकार की अनुवाद की यह तर्ज़ अन्य सभी रचनाओं में भी दिखती है जिसका सत्यापन वड्सवर्थ की उस परिभाषा से स्वयमेव हो जाता है कि कोई भी कविता तो 'सहज भावों का उच्छलन मात्र होती है।' उक्त कविता की ही अगली पंक्ति में इस बात की पुष्टि स्वयमेव हुई है—

जागाये माधवीवन
चले गेछे बहु क्षण
प्रत्यूष नवीन,
प्रखर पिपाशा हानि
पूष्पेर शिशिर टानि
गेछे मध्यदिन,

माठेर पश्चिम शेषे
अपराह्न म्लान हेसे
होलो अवसान
परपारे उत्तरिते
पा दियेछी तरनीते
तबूउ आह्वान ?

****

सुप्त मधुबन को जगा,
उषा हो चुकी है विदा
ज्योतिमय बनाती दिशाकाश
फूलों का चुरा पराग,
मध्य दिन भी गया भाग,
ओस के कणों से बुझा प्यास
हाट के पश्चिम कुवेश,
शेष दिन हो गया शेष,
मैंने निज विरामसमय जान,
छोड़ पार तक आ नाव,
तट पर धरे ही हैं पाँव,
अब भी तुम्हारा यह आह्वान!

कविता की मूल पंक्तियों से यत्किंचित दूर हटती भावतरंगें अनुवाद में समयानुकूल समानुभूति या चित्रानुभूति का रूप ग्रहण कर लेती हैं लेकिन सह-अनुभूति का बोध नहीं करा पातीं। ऐसे वैषम्य यदा कदा अनुवाद में मिलते हैं लेकिन बिम्बनिर्माण और चित्रानुभूति में उनकी शान देखते बनती है। कवि के हिन्दी अनुवाद की यही विशेषता भी है कि कविता की अनुभूति परम्परागत 'विभावानुभावसंचारीसंयोगात् रसनिष्पत्तिः' से विवेचित करने के बजाय वर्तमान शैलीय उपकरणों, यथा बिम्ब, प्रतीक आदि से सहज ही विश्लेष्य हैं अतः

इन्हीं उपकरणों से कविता के भाव-बोध का मूल्यांकन किया जाना उचित होगा, न कि रस-सिद्धांत और अलंकारवादी साम्प्रदायिक परम्परावादी उपकरण दृष्टि से।

'अशेष' गुलाबजी की उन कविताओं में से है जिनसे उनका बचपन से प्रेम हो गया था। वे मानते भी हैं, "मैंने अपनी उसी किशोरावस्था में टो-टोकर रवीन्द्रनाथ की कुछ कविताएँ मूल बँगला में पढ़ी थीं जिनमें दो-तीन ने मुझे अत्यंत प्रभावित किया था। वे थीं, 'अशेष', 'भैरवीगान' और 'उर्वशी'। जिस पुस्तक में वे कविताएँ थीं, वह मैंने वापस पुस्तकालय को नहीं लौटाई और उसका मूल्य चुका दिया। वह पुस्तक आज भी मेरे पुस्तकालय की शोभा बढ़ा रही है। इसलिए 'जन गण मन', 'मेरा सोने का बंगाल' तथा 'शिवाजी-उत्सव' की प्रारम्भिक कविताओं के बाद मैंने उन्हीं का चयन किया।"

ज़ाहिर है कि इन रचनाओं के मिस गुलाबजी ने रवीन्द्रनाथ की उन अनुभूतियों को स्पर्श करने का गहन प्रयास किया है जिसे उन्होंने कभी गहराई से आत्मसात् किया था और अपनी मनोवृत्तियों को नवीन अवधान दिया था। अनुवादक यदि मूल कवि का अन्तरंग बनकर उसकी हर सोच और चिंतनदृष्टि का सहयात्री बन जाता है तो अनुवाद की प्रक्रिया कहीं दूर छूट जाती है क्योंकि वह कवि की अनुभूति का हिस्सा बन जाती है जिसका संतरण डोंगी के साथ चलते जल की तरंग की भाँति उठती हिलोरों के सहयात्री सदृश दीखता है और होता भी है। गुलाबजी ने इसी अनुभूति से अपनी वर्त्तमान अवस्था से उभरती मनोदशा को जोड़कर उसे सोने को तौलनेवाले बटखरे की भाँति अमूल तत्त्व मान लिया है जिसके प्रति वे संजीदा भी हैं और सजग भी। बकौल गुलाबजी, "मैंने एक हजार के करीब गेय गीतों को लिखने के बाद अपनी पुस्तक 'कागज़ की नाव' में पिछले दिनों जो लिखा था, 'हे रवीन्द्रनाथ, मैं भी चल सकूँगा अब तुम्हारे साथ-साथ!' गुलाबजी का कविता में वह साथ-साथ चल सकना अभी भी जारी है, कागज़ की नाव के सहारे ही सही। तभी तो 'केनो यामिनी

ना जेते', 'मूखपाने चेये देखि', तथा 'एकदा तूमि प्रिये' शीर्षक गीतों के अनुवाद में उन्होंने रवीन्द्रसंगीत की धुन पर गाने की संकल्पना के परिप्रेक्ष्य में इस बात का प्रयत्न भी किया है कि अनुवाद के मूल में रसबोध और अर्थबोध की रक्षा करते हुए रवीन्द्रसंगीत की धुन की भी रक्षा हो सके।''

'एकदा तूमि प्रिये' में मानवीकरण का यह दृश्य जीवन के फागुन की कुसुमित चम्पई दृष्टि का मधुर आभास अपने सम्पूर्ण चांचल्य के साथ कराता है जिसमें अनुवाद प्रक्रिया लुप्त होकर अनुभूति के अनुकर्म का दृश्य उपस्थित कर देती है —

गायी नित जो रागिनी, एकाकिनी, वन-वन में,
आज भी व्याप रही, काँप रही तृण-तृण में
गूँथी थी आँचल में, बैठी छायातल में जो फूलमाला
तुम्हारा आज भी वह परस, सरस, सुधारस-ढाला
फागुन ढूँढ़ता फिर रहा चंपई फूलों पर झुक, झूल
आज क्या छल है सभी!
वह मिलन क्या गयी भूल!

'भैरवी गान' और 'शिवाजी उत्सव' में अनुवाद की प्रकृति को देखने से यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा कि गुलाबजी रवीन्द्रनाथ की अनुभूति के समानांतर सहचर बन गए हैं और रवीन्द्रनाथ की वर्णविन्यास-दृष्टि की अपेक्षा अनुवाद की शब्द-योजना की ऊँचाई ज़्यादा प्रतीत होने लगती है। एक कारण यह भी है कि अनुवादक स्वयं एक श्रेष्ठ रचनाकार के भावों को आत्मसात् करते करते स्वयं भावुक हो जाता है और जैसे-जैसे कविता बंगला की मधुर भावमय तलहटी में उतरती चलती है, वैसे-वैसे अनुवादक भी हिन्दी भाषा की सुमधुर शब्दावली की अठखेलियों के बीच नये-नये प्रयोगों का आनन्द लेने लगता है। फलतः इन दोनों कविताओं में अनुवाद लयात्मक शैली में अवतरित होने लगता है, न कि अनुवाद शैली में। ऐसे स्थलों पर ऐसा प्रतीत

होने लगता है कि अनुवादक किसी लोकशैली के रचनाकार की भाँति वर्णविन्यास में चतुर खिलाड़ी की तरह भावना के अतिरेक की गोद में शब्द के वज़न का आभास करने लगता है और फिर बटखरे की तुलना में वस्तु की मूल्यवत्ता का परीक्षण करने में तल्लीन हो जाता है। कविता की यह मूल्यांकन शैली उसकी अपनी निजी शैली बन गयी है, जो उसकी सहृदयता और अलंकारप्रियता, बिम्बात्मकता तथा प्रतीकात्मकता जैसे भाषिक उपकरणों की प्रयोगशीलता को औरों से अलगाती है या यों कहें कि वह अपने समकालीन कवियों को पीछे छोड़ देने में समर्थ हो जाता है। वह अनुभव भी करता है –

"मेरी वह कामना भी इस पुस्तक द्वारा आंशिक रूप से पूरी हो सकी है क्योंकि जिस नौका द्वारा रवीन्द्रनाथ ने कितने ही महासागरों का संतरण किया था उसके द्वारा दो चार मील का चक्कर तो मैंने लगा ही लिया है। एक बात और है, सोने को तौलने के लिये जिस बटखरे का उपयोग किया जाता है, तौल के समय तो गुरुता में वह सोने के समकक्ष हो ही जाता है और वैसा माना भी जाता है। इसलिए इस अनुवाद के समय तो मुझे वह गौरव मिलना ही चाहिए।"

गुलाबजी की यह वाञ्छना निश्चय ही इस कृति के सृजन का सबसे बड़ा प्रमाण है जिसे हमेशा स्मरण किया जाता रहेगा। इत्यलम्

प्रोफ़ेसर यज्ञ प्रसाद तिवारी
प्रोफ़ेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष
हिन्दी विभाग नागपुर विश्वविद्यालय
नागपुर (महाराष्ट्र)

नवरात्रि
५/१०/२०१३

अपनी ओर से

जब मेरी पहली काव्यपुस्तक प्रकाशित हुई थी तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त ने मुझसे कहा था, "यदि आपको कभी कविता के लिए कोई प्रेरणा न प्रतीत हो और न कोई नया विषय ही सूझे तो किसी बड़ी काव्यरचना का अनुवाद करने लग जाइयेगा। मैंने अपने जीवन में यही किया है।" उनके सदुपदेश पर अमल करने की बारी पहली बार सन् २०१२ में, अर्थात् ७२ वर्षों बाद ही आयी जब मैंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कुछ रचनाओं का हिन्दी में यह अनुवाद किया। परन्तु यह भावानुवाद है और कई जगह पर मैं पथ से बहक भी गया हूँ। कवि अच्छा अनुवादक होता भी नहीं है क्योंकि उसके निजी भावोच्छ्वास पग-पग पर उसे भटका देते हैं। इसलिए मेरे अनुवाद को भावानुवाद ही समझना चाहिए। अत: इसमें जहाँ आपको कोई त्रुटि दिखाई दे, समझ लीजियेगा वह मेरे ही कारण है।

इस अनुवाद में हिन्दी और बँगला भाषा का अंतर भी स्पष्ट दिखाई देगा। बँगला जहाँ माधुर्यरस में डूबी नदी की अवरोधरहित धारा के समान बहती है, वहीं आधुनिक हिन्दी को (जिसे प्रारंभ में खड़ी बोली का नाम दिया गया था) हर पग पर विभक्तियों की चट्टानों से टकरा कर ही आगे बढ़ना पड़ता है।

मेरे अनुवाद-कार्य में लगने की भी एक कहानी है। मेरे आदरणीय मित्र श्री जुगलकिशोरजी जैथलिया ने रवीन्द्रनाथ और मालवीयजी के जन्म की १५०वीं जयन्ती के अवसर पर स्मृति-ग्रन्थ निकालने की योजना बनाई थी। उसके लिए उन्होंने रवीन्द्रनाथ की कविता 'शिवाजी महोत्सव' का हिन्दी में

अनुवाद करने के लिए मेरे मित्र, रवीन्द्रनाथ के गीतों के हिन्दी में अनुगायक, श्री दाऊलालजी कोठारी को मेरे पास भेजा था। पहले तो मैं घबराया। यों तो मैंने सन् १९८४ में अपनी हिन्दी कविताओं का स्वयं अंग्रेजी में अनुवाद किया था परंतु किसी अन्य कवि की कविता का अनुवाद करने का यह मेरा पहला ही अवसर होता। 'उमर खय्याम' नामक अपनी कविता भी मैंने अनुवाद के रूप में नहीं, उमर खय्याम के चरित्र-चित्रण के रूप में लिखी थी। जो भी हो, अंत में मैंने इसे चुनौती के रूप में स्वीकार कर लिया। वह अनुवाद पूरा करने पर मेरे लिए जैथलियाजी का दूसरा फरमान आया कि मैं भारत के राष्ट्रगीत 'जन गण मन' का भी हिन्दी में अनुवाद कर दूँ। इसके बाद तो रास्ता खुल गया। अमेरिका आने पर मैंने रवीन्द्रनाथ की कुछ अन्य रचनाओं का भी, जो मुझे प्रिय थीं, अनुवाद कर डाला। सच्ची बात तो यह है कि रवीन्द्रनाथ की जो भी कविता पढ़िए, उसकी सुन्दरता मन को मोह लेती है और उसे अपने शब्दों में उतारने की इच्छा स्वत: जाग उठती है।

रवीन्द्रनाथ की छंदविधा का अनुसरण करते हुए भी हिन्दी की छंदयोजना, भाव, तुक और अभिव्यक्ति की भिन्नता मुझे पग-पग पर भिन्न मार्ग पर ले जाती रही है। इन कविताओं के अनुवाद में मेरा सदा यह ध्यान रहा है कि मेरी रचनाएँ पढ़ी जाने पर उनमें अनुवाद तो क्या, भावानुवाद होने का भी बोध न हो और वे स्वतंत्र कविता का पूरा आनन्द दें। पाठक भूल जाय कि वह कोई अनुवाद पढ़ रहा है। इसके लिए मुझे तुक और अभिव्यक्ति ही नहीं, तदनुकूल छंदविधान भी ढूँढना पड़ा है और नयी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ भी लानी पड़ी हैं। यही नहीं, रवीन्द्रनाथ के बँगला छंदों को भी हिन्दी के वर्णिक छंदों का सहारा लेकर हिन्दी में उतारने का भी कई स्थान पर मैंने प्रयास किया है।

आज से प्राय: ५० वर्ष पूर्व रवीन्द्रनाथ की जन्मशती पर उनकी एक सौ कविताओं का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित हुआ था, परन्तु वह गद्य में था। उसके बाद उनकी अन्य कृतियों का 'रवीन्द्र रचना संचयन' के नाम से हिन्दी

में अनूदित एक वृहद संग्रह और भी प्रकाशित हुआ जिसमें उनकी कुछ कविताएँ भी थीं, परन्तु ये सभी कविताएँ प्राय: गद्य में अनूदित थीं। कविता की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में यह विचार मान्य है कि जो कविता गद्य में अनूदित या अन्वयित की जाने पर भी आकर्षक बनी रहे वह अच्छी कविता मानी जायगी। गद्यात्मक रूप में भी रवीन्द्रनाथ की कविताएँ यद्यपि मन को मोह लेती हैं फिर भी वे कविता का आनन्द नहीं दे सकतीं। इसलिए रवीन्द्रनाथ की मूल कविताओं को कविता के रूप में हिन्दी में उपलब्ध कराने का मेरा यह विनम्र प्रयास अपने ढंग का पहला प्रयास है। मैं इसमें कहाँ तक सफल हो सका हूँ, इसका निर्णय सुधी पाठक और विद्वान समालोचक करेंगे। मैंने प्राय: उन्हीं कविताओं को अनुवाद के लिए चुना है जिनकी भावानुभूति मुझे स्वयं में हुई है। कहीं-कहीं मुझे कुछ स्वतंत्रता भी लेनी पड़ी है जैसे 'शाहजहाँ' कविता के अंतिम अंश में।

मुझे यह सोच कर थोड़ा संतोष भी हो रहा है कि मेरे इस श्रम के पुरस्कार के रूप में अब मेरी कविता पर काम करनेवालों को यह भी जोड़ना पड़ेगा कि मैंने किसी अन्य कवि की कविताओं का अनुवाद भी किया है और अनुवादक के रूप में मेरी इस विशेषता पर भी उसी प्रकार खोटा-खरा कुछ लिखना पड़ेगा जिस प्रकार वे मेरी इधर की लिखी अंग्रेजी की मौलिक कविताओं पर अपना मंतव्य देने को विवश हैं।

कविता में शब्दों का कितना महत्व होता है यह मैं भलीभाँति जानता हूँ। इसलिए, जहाँ तक ठीक समझा, मैंने रवीन्द्रनाथ के शब्दों को और कहीं-कहीं तो उनकी पदावली तक को भी अपनी कविता में रख लिया है। परन्तु यह इसीलिए संभव हो सका है क्योंकि हिन्दी और बंगाली संस्कृत से निकली हुई भाषाएँ हैं जिनकी शब्दावली प्राय: एक जैसी हैं। प्रस्तुत कृति में कविताओं का चयन किसी एक पुस्तक से न करके मैंने रवीन्द्रनाथ की विभिन्न पुस्तकों से अपनी रुचि के अनुसार किया है। जिन पुस्तकों में से कविताएँ ली गयी हैं उनकी तालिका इस पुस्तक के अंत में दी गयी है। उनकी पृष्ठ-संख्या

'गीतवितान' को छोड़कर 'संचयनी' में संगृहीत अन्य पुस्तकों की पृष्ठसंख्या के अनुसार है।

इस प्रकार अनुवादक के रूप में भी मैं सूरदासजी तथा गोस्वामी तुलसीदासजी से लेकर मैथिलीशरणजी, निरालाजी, महादेवीजी, दिनकरजी और बच्चनजी की महान कवि-परम्परा से जुड़ गया हूँ क्योंकि उन सभी ने कवि होते हुए भी कविताओं के अनुवाद का कार्य भी किया है। स्वयं रवीन्द्रनाथ ने भी प्रारम्भिक अवस्था में विद्यापति और कबीर के पदों का अनुवाद किया था। मैं समझता हूँ, इसके लिए भी यह कृति मुझे विशेष गौरव प्रदान करेगी।

रवीन्द्रनाथ के जन्म की १५०वीं जयन्ती पर उनकी विराट वाटिका से लाये हुए २६ फूलों की यह माला गूँथकर उनके चरणों में अर्पित करते हुए आज मुझे पूर्ण संतोष और हर्ष का अनुभव हो रहा है, इतने महान व्यक्ति के साथ जुड़ जाने में कुछ-कुछ गर्व का भी। इस काव्यांतर में मुझे गुरुदेव का आशीर्वाद भी निरंतर मिलता रहा है अन्यथा इस रूप में यह कार्य कभी पूरा नहीं हो पाता।

मैंने अपनी किशोरावस्था में, रवीन्द्रनाथ की अंतिम अस्वस्थता के समय, माँझी के रूप में उन्हें संबोधित करते हुए उन्हें यह आश्वासन दिया था-

'इन लहरों से मैं खेलूँगा अब तेरी नौका लेकर।'

मेरी वह कामना भी इस पुस्तक द्वारा आंशिक रूप से पूरी हो सकी है क्योंकि जिस नौका द्वारा रवीन्द्रनाथ ने कितने ही महासागरों का संतरण किया था उसके द्वारा दो-चार मील का चक्कर तो मैंने लगा ही लिया है। एक बात और है। सोने को तौलने के लिये जिस बटखरे का उपयोग किया जाता है, तौल के समय तो गुरुता में वह सोने के समकक्ष हो ही जाता है और वैसा माना भी जाता है। इसलिए इस अनुवाद के समय तो मुझे वह गौरव मिलना ही चाहिए।

मैंने अपनी उसी किशोरावस्था में टो-टोकर रवीन्द्रनाथ की कुछ कविताएँ मूल बँगला में पढ़ी थीं जिनमें दो-तीन ने मुझे अत्यंत प्रभावित किया था। वे थीं, 'अशेष', 'भैरवीगान' और 'उर्वशी'। जिस पुस्तक में वे कविताएँ थीं, वह मैंने वापस पुस्तकालय को नहीं लौटाई और उसका मूल्य चुका दिया। वह पुस्तक आज भी मेरे पुस्तकालय की शोभा बढ़ा रही है। इसलिए 'जन गण मन', 'मेरा सोने का बंगाल' तथा 'शिवाजी-उत्सव' की प्रारम्भिक कविताओं के बाद मैंने उन्हीं का चयन किया। मेरी उस काल की कविता 'माँझी के प्रति' में, जिसमें रवीन्द्रनाथ की अस्वस्थता के समय मैंने उनकी नौका खेने का उन्हें आश्वासन दिया था, उनका वही कविव्यक्तित्व उभरकर आया है। इस संग्रह की अंत की ४ कविताएँ तो रवीन्द्रनाथ की मृत्यु के कुछ ही दिन पूर्व की रचनाएँ हैं, अत: उनमें एक भिन्न प्रकार की आध्यात्मिक पारदर्शिता तथा भावशबलता है जो मेरी वर्तमान मनोदशा को पूरी तरह उजागर करती हैं। मैंने एक हजार के करीब गेय गीतों को लिखने के बाद अपनी पुस्तक 'कागज़ की नाव' में पिछले दिनों जो लिखा था:

'हे रवीन्द्रनाथ, मैं भी चल सकूँगा अब तुम्हारे साथ-साथ'

वह गीतगायक के रूप में ही नहीं, मानसिक रूप में भी यथार्थ है क्योंकि उम्र की विभिन्न मन:स्थितियों में लिखे रवीन्द्रनाथ के गीतों में उन अवस्थाओं में अपनी मन:स्थिति की भी वैसी ही अनुगूँज सुनता आ रहा हूँ।

मैंने प्रस्तुत पुस्तक में 'केनो यामिनी ना जेते जागाले ना', 'मुख पाने चेये देखी' तथा 'एकदा तूमि प्रिये' शीर्षक गीतों के अनुवाद में यह प्रयत्न किया है कि वे रवीन्द्र-संगीत की धुन पर गाये भी जा सकें। मेरी कनिष्ठ पुत्री विभा झालानी को, जो संगीत में बहुत रुचि रखती है और जिसने मेरे बहुत से गीतों को संगीत में उतारा है, रवीन्द्र-संगीत भी उतना ही प्रिय है जितना मुझे। वह मेरे द्वारा अनूदित इन गीतों को रवीन्द्र-संगीत की धुन में गा सके इसके लिये भी मैंने उपर्युक्त तीन गीतों के, जो मुझे अत्यंत प्रिय हैं, अनुवाद में मूल के

रसबोध और अर्थबोध की रक्षा करते हुए रवीन्द्र-संगीत की धुन का भी ध्यान रखा है। मेरे मित्र दाऊलालजी कोठारी ने रवीन्द्रनाथ के गीतों का इस प्रकार अनुवाद करने का सूत्रपात पहली बार किया था जिसके लिए उन्हें काफी सराहा गया है। यही कार्य मैंने ऊपर लिखे तीन गीतों में अपने ढंग से किया है।

इसके बावजूद भी यदि मेरी ज्येष्ठ पुत्री प्रतिभा इसके टंकण की पूरी जिम्मेदारी न सँभाल लेती और समय-समय पर अपने सुझाव देकर मेरी सहायता न करती तो इस पुस्तक का प्रकाशन बहुत कठिन होता। प्रतिभा ने 'मूखपाने चेये देखी' नामक रवीन्द्रनाथ के गीत के मूल भाव को लेकर एक सुंदर रचना की है। उसे भी इस पुस्तक में दिया जा रहा है। मैंने रवीन्द्रनाथ के गीत 'केनो जामिनी ना जेते' के दो भावानुवाद किये थे, एक रवीन्द्र-संगीत की धुन के आधार पर और दूसरा स्वतंत्र कविता के रूप में। उसी प्रकार के अब उनके दूसरे गीत के भी दो भावानुवाद उपलब्ध हो जायेंगे।

सब कुछ कहने के बाद भी यह भूमिका अधूरी रह जायगी यदि मैं अपने प्रिय मित्र श्री जुगल किशोरजी जैथलिया को धन्यवाद न दूँ जो सदैव, अदृश्य रूप से भी, मुझे इसमें प्रेरणा देते रहे हैं। इसके साथ ही मैं श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के मंत्री श्री महावीर प्रसादजी बजाज को भी धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन सम्बन्धी बहुत सी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाया है।

सुधी पाठकों के सुझावों का सदैव स्वागत है।

– गुलाब खंडेलवाल

अनुक्रमणिका

१. जन–गण–मन ३
२. मेरा सोने का बंगाल (आमार सोनार बांगला) ७
३. शिवाजी उत्सव ११
४. अशेष २९
५. भैरवीगान ४५
६. रात और प्रभात (रात्रे उ प्रभाते) ५५
७. अभिसार ५९
८. उर्वशी ६५
९. रात रहते जगाया था क्यों न मुझे
(केनो जामिनी ना जेते जागाले ना) ७३
१०. जब थी रात (केनो जामिनी ना जेते) ७४
११. मुख की छवि तो देखूँ (मूखपाने...) ७६
१२. मुखछवि देखी आज तुम्हारी (मूखपाने...) ७७
१३. एक दिन तुम प्रिये (एकदा तूमि प्रिये) ७९
१४. स्वर्ग से विदा (स्वर्ग सेई विदाय) ८१
१५. दिन का शेष (दिनशेषे) ९३
१६. धूप चाहती मिलूँ गंध से (आवर्तन) ९७
१७. वह है नहीं अधूरी (असमाप्त) ९९

१८. जाने के दिन (याबार दिन) १०१
१९. कर्तव्यग्रहण १०३
२०. भक्तिभाजन १०३
२१. अपना और संसार का (निजेर उ साधारणेर) १०३
२२. कुटुंबिता १०५
२३. असंभव-अच्छा (असंभव भालो) १०५
२४. शाहजहाँ १०७
२५. आत्मा की अमरता १२१
२६. जन्मदिन १२५
२७. जीवनसत्य १२७
२८. शान्तिपारावार १२९
२९. रवीन्द्रनाथ और मैं १३०
३०. पुस्तकों की तालिका तथा उनकी पृष्ठसंख्या १३८

***
*

'जन गण मन..' के उद्‌गाता

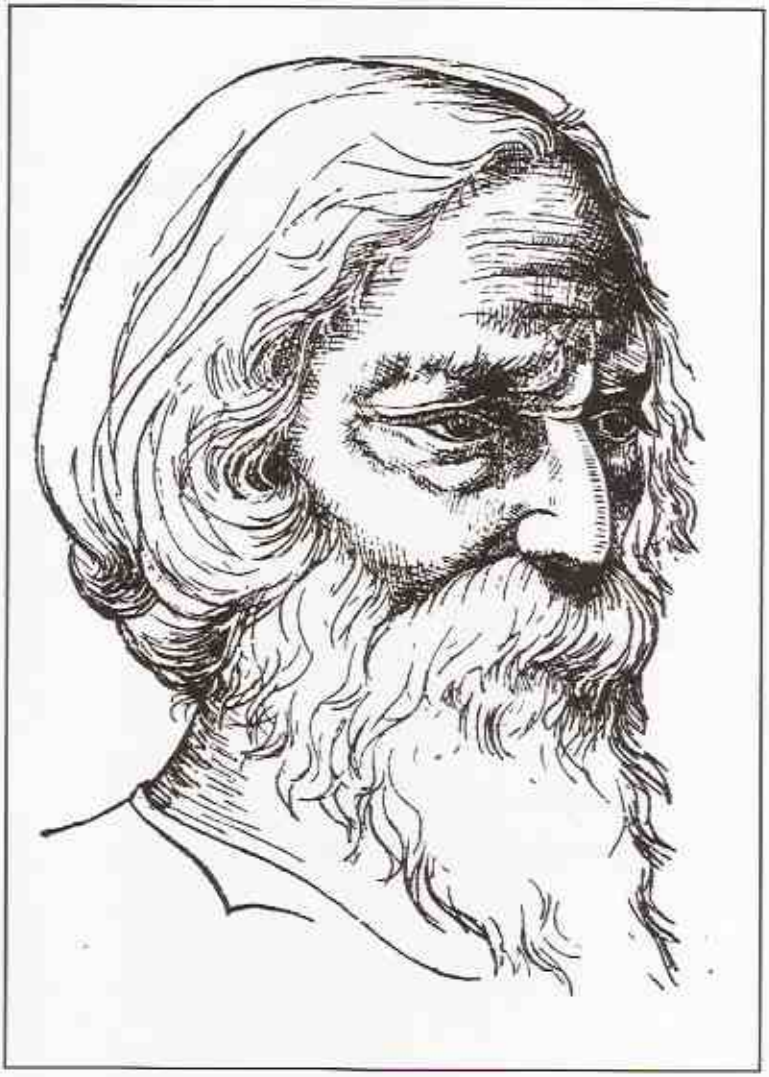

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जनगण-मन

जनगणमन-अधिनायक जय हे भारतभाग्यविधाता !
पंजाब सिन्धू गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल बंग
विन्ध्य हिमाचल यमूना गंगा उच्छल जलधितरंग
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिष माँगे,
गाहे तव जय गाथा ।
जनगणमंगलदायक जय हे भारतभाग्यविधाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे

अहरह तव आह्वान प्रचारित, शुनि तव उदार वाणी
हिन्दू बौद्ध सिख जैन पारसिक मुसलमान खृस्टानी
पूरब पश्चिम आसे तव सिंहासन-पाशे
प्रेमहार हँय गाँथा ।
जनगण-ऐक्यविधायक जय हे भारतभाग्यविधाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे

जनगण-मन

जनगणमन-अधिनायक जय हे भारतभाग्यविधाता !
पंजाब सिन्ध, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल, बंग
विन्ध्य, हिमाचल यमुना गंगा गर्जित जलधि-तरंग
नाम सुमरते जागें, तुमसे आशिष मांगें,
गायें नित जयगाथा।
जनगणमंगलदायक जय हे भारतभाग्यविधाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे

प्रतिदिन सुन आह्वान तुम्हारा, मधुर तुम्हारी वाणी,
हिन्दु, बौद्ध, सिख, जैन, पारसी, मुसलमान, खिस्तानी,
दिशा-दिशा से आकर, रखते सिंहासन पर
हार प्रेम से गाँथा।
जनगण-ऐक्यविधायक जय हे भारतभाग्यविधाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे

पतन-अभ्यूदय-बन्धूर पन्था, यूग-यूग धावित यात्री --
हे चिरसारथि, तव रथचक्रे मुखरित पथ दिनरात्रि ।
दारुण विप्लव-माझे, तव शंखध्वनि बाजे
संकटदु:खत्राता ।
जनगणपथपरिचायक जय हे भारतभाग्यविधाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे

घोरतिमिरघन निविड़ निशीथे पीड़ित मूर्छित देशे
जाग्रत छिलो तव अविचल मंगल नतनयने अनिमेषे
दु:स्वप्ने आतंके, रक्षा करिले अंके
स्नेहमयी तुमि माता ।
जनगणदु:खत्रायक जय हे भारतभाग्यविधाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे

रात्रि प्रभातिल, उदिल रविच्छवि पूर्व-उदयगिरिभाले,
गाहे विहंगम, पूण्य समीरण नवजीवनरस ढाले,
तव करुणारुण रागे, निद्रित भारत जागे,
तव चरणे नत माथा
जय जय जय हे, जय राजेश्वर भारतभाग्यविधाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे

युग-युग धावित हे चिर सारथि, पतन-अभ्युदय-पथ से,
मुखरित रखते जग अविरत तुम, अंकित कर निज रथ से,
विप्लव देख गरजता, शंख तुम्हारा बजता,
दुख-संकट-भय-त्राता
जनगणपथपरिचायक जय हे भारतभाग्यविधाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे

घोर तिमिरमय निशि में मूर्छित, देश दुखी, अकुलाया,
जाग्रत रहा तुम्हींसे पाकर, सतत स्नेहमय छाया,
मेटे दुःखमय सपने, उसे अंक ले अपने,
ज्यों स्नेहाकुल माता
जनगणसंकटत्रायक जय हे भारतभाग्यविधाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे

बीती रात, उदयगिरि पर रवि उगा निशा-तम हरता,
गाते पंछी, मृदुल पवन बह, नवजीवन-रस भरता,
पा तुमसे करुणामृत, जगता सोया भारत
रख चरणों पर माथा
जय जय जय हे, जय राजेश्वर भारतभाग्यविधाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे

आमार शोनार बांग्ला

आमार शोनार बांग्ला, आमि तोमाय भालोबासि
चिरदिन तोमार आकाश, तोमार बातास, आमार प्राणे बाजाय बाँशि
उ माँ, फागुने तोर आमेर बने घ्राणे पागल करे,
मरि, हाय, हाय रे --
उ माँ अघ्राणे तोर भरा खेते आमि कि देखेछि मधुर हासि।।

की शोभा, की छाया गो, की स्नेह, की माया गो --
की आँचल बिछायेछो बटेर मूले, नदीर कूले कूले।
माँ, तोर मुखेर बाणी आमार काने लागे सुधार मतो,
मरि, हाय, हाय रे --
माँ, तोर बदन खानि मलिन होले, उ माँ आमि नयनजले भासि।।

मेरा सोने का बंगाल

ओ स्वर्णिम बँगला माँ ! तुझको करता हूँ मैं प्यार
तेरे गगन, पवन से सुनता वंशी का गुंजार
फागुन में तेरे रसाल-वन,
सौरभ से पागल करते मन
माँ तुझ पर बलि जाऊँ
अनाघ्रात भी खेत धान के हँसते दिखें अपार

क्या ही शोभामय तरु-छाया,
क्या ही स्नेहमयी है माया !
वट-तरु-तल में, नदी-तटों पर !
बिछा दिया आँचल क्या सुंदर !
माँ तेरे स्वर से कानों में बहे सुधा की धार
माँ ! तुझ पर बलि जाऊँ
नयन सजल हों, मलिन दिखे यदि तेरा मुख सुकुमार

तोमार एइ खेलाघरे शिशुकाल काटिलो रे,
तोमारि धूलामाटि अंगे माखि धन्य जीवन मानि।
तूइ दिन फुराले संध्याकाले की दीप जालिस घरे
मरि, हाय, हाय रे --
तखन खेलाधूला सकल फेले, उ माँ, तोमार कोले छूटे आसि।।

धेनूचरा तोमार माठे, पारे जावार खेयाघाटे,
सारा दिन पाखि-डाका छायाय ढाका तोमार पल्लीबाटे,
तोमार धाने-भरा आंगिनाते जीवनेर दिन काटे,
मरि, हाय, हाय रे –
उ माँ, आमार जे भाई तारा सबाई, उ माँ, तोमार राखाल तोमार चासि।।

उ माँ, तोर चरणेते दिलेम एई माथा पेते --
दे गो तोर पायेर धूला, से जे आमार माथार माणिक होबे।
उ माँ, गरीबेर धन जा आछे ताई दिबो चरणतले,
मरि, हाय, हाय रे –
आमि परेर घरे किनबो ना, आर, माँ, तोर भूषन ब'ले गलार फाँसि।।

वह था तेरा ही क्रीडांगन,
जिसमें काटा मैंने बचपन
लिपट धूल-मिट्टी में तेरी,
धन्य हुई, माँ ! काया मेरी
दीप जला, दिन के छिपने पर,
क्या ही दीप्त किया तूने घर !
माँ ! तुझ पर बलि जाऊँ
खेल भुला मैं फिरा गोद में तेरी ही थक, हार

गो-चारण के खेत मनोहर,
पार-हेतु तरनियाँ घाट पर
जिनमें विहग-नाद हो प्रतिपल,
हाट-बाट छायावृत, शीतल
भरा धान से तेरा आँगन,
इन सब में ही कटता जीवन
माँ! तुझ पर बलि जाऊँ
तेरे कृषक और चरवाहे मेरा कुल परिवार

मस्तक तेरे चरणों पर नत,
पदरज लूँ सिर पर माणिकवत्
जो भी मुझ गरीब का है धन,
तेरे चरणों में है अर्पण
माँ ! तुझ पर बलि जाऊँ
पर-गृह से क्रय करूँ न अब, गलफाँसी वे गलहार

शिवाजी-उत्सव

कोन दूर शताब्देर कोन एक अख्यात दिवसे
नाहि जानि आजि
माराठेर कोन शैले अरण्येर अन्धकारे ब'से ,
हे राजा शिवाजी
तव भाल उद्भासिया ए भावना तड़ित्प्रभावत्
एसेछिलो नामि
'एक धर्मराज्यपाशे खण्ड छिन्न विक्षिप्त भारत
बँधे दिब आमि '

सेदिन ए बंग देश उच्चकित जागे नि स्वपने,
पायनि संवाद
बाहिरे आसनि छूटे, उठे नाई ताहार प्रांगणे
शुभ शंखनाद
शांतमूखे बिछाइया आपनार कोमलनिर्मल
श्यामल उत्तरीय
तन्द्रातूर संध्याकाले शत पल्लीसन्तानेर दल
छिलो बक्षे करि

शिवाजी-उत्सव

किन दूर शताब्दियों के पार, एक दिन सहसा
मैं नहीं जानता हूँ आज,
महाराष्ट्र के किस गिरिवन में, मौन भावलीन
बैठे हे शिवाजी महाराज
आपके आनन को कैसे, तड़ितवत् प्रदीप्त करते
चमक उठा था यह विचार,
'भारत जो खण्ड-खण्ड पड़ा, धर्मशासन में
करना है उसे एकाकार.'

उस दिन बंग-देश को, जो नींद से जगा था नहीं
घेरे था जिसे जड़ प्रमाद,
आत्मलीन उसके घोर तिमिर भरे प्रांगण में
गूँजा नहीं वह शंखनाद
शांत बंगभूमि अपनी ही भावना में लीन
फैला निज श्यामल उत्तरीय,
ग्रामवासी शत-शत निज पुत्रों सँग थी बिता रही
अपनी सांध्यवेला रमणीय

तार परे एकदिन माराठार प्रान्तेर हइते
तव वज्रशिखा
आँकि दिलो दिग्-दिगन्ते युगान्तेर विद्युत्-वह्निते
महामन्त्रलिखा
मोगल उष्णीषशीर्ष प्रस्फुरिल प्रलयप्रदोषे
पक्वपत्र यथा
सेदिन ओ शोने नि बंग माराठार से वज्रनिर्घोषे
कि छिलो बारता

तार परे शून्य हल झंझाक्षुब्ध निबिड़ निशीथे
दिल्लीराजशाला
एके एके कक्षे-कक्षे अन्धकारे लागिल मिशिते
दीपालोक माला
शवलुब्ध गृध्रदेर ऊर्ध्वस्वर वीभत्स चीत्कारे
मोगलमहिमा
रचिलो श्मशानशय्या-मूष्ठिमेय भस्मरेखाकारे
होलो तार सीमा

उन्हीं दिनों आया महाराष्ट्र-भू से एक दिवस
क्रांतिमय प्रदीप का प्रकाश,
जिसने आँक दिया दिग्-दिगंत में सन्देश अपना
मुक्ति की बँधाता नई आस
संध्या के पीत पत्र सदृश मुग़ल शासन को
देता चुनौती-सा जयघोष,
सुना नहीं उस दिन बंग-भू ने रह निद्रालीन
निज-पर का नहीं था उसे होश

एक-एक करके बुझते दीपकों-सी लुप्त हुई
राज-सत्ता दिल्ली की विराट्,
काल के कराल क्रूर करों ने विनष्ट किया
सदियों का जोड़ा ठाठ-बाट
चीत्कार करते शव-लुब्ध गृद्ध-दल से घिरी
दिल्ली बन गयी थी श्मशान,
मुट्ठी भर प्रदेश ही थे उसकी साम्राज्य-सीमा
कंठ पर थे टिके हुए प्राण

सेदिन ए बंग प्रान्ते पण्यविपणीर एक धारे
नि:शब्दचरण
आनिलो वणिकलक्ष्मी सुरंगपथेर अन्धकारे
राजसिंहासन
बंग तारे आपनार गंगोदके अभिषिक्त करि
निलो चुप चुपे
वणिकेर मानदण्ड देखा दिलो पोहाले शर्वरी
राजदण्डरूपे

सेदिन कोथाय तूमि हे भावुक, हे वीर माराठि,
कोथा तव नाम !
गैरिक पताका तव, कोथाय धूलाय होलो माटि --
तूच्छ परिणाम !
विदेशीर इतिवृत्त दस्यू बोलि करे परिहास
अट्टहास्यरवे
तव पूण्यचेष्टा यत तस्करेर निष्फल प्रयास
एइ जाने सवे

लाई थी वणिक लक्ष्मी गुप्त मार्ग से जिस दिन
मातृभूमि का सिंहासन छीन,
अपनी प्रच्छन्न नीतियों की चाल से दिन-दिन
करती हुई उसे शक्तिहीन
धर दिया वणिक विदेशी-शीश पर जिस दिन
बंग-भू ने राजमुकुट काँप,
करके गंगोदक से अभिषिक्त उसे, स्वामी बना
बन गयी सेविका थी आप

उस दिन कहाँ थे वीर महाराष्ट्र-अधिपति तुम
कहाँ था तुम्हारा वह सुनाम
गैरिक पताका धूलिसात् थी तुम्हारी उस दिन
शून्य था विजय का परिणाम
तुम्हें दस्यु नाम दे विदेशियों के इतिहास
करते थे तुम्हारा परिहास,
मिथ्या बता उन्हें दिव्य कर्म जो किये थे तुमने
मानते थे तुम्हें क्रीतदास

अयि इतिवृतकथा, क्षांत करो मूखर भाषण
उगो मिथ्यामयी,
तोमार लिखन'परे विधातार अव्यर्थ लिखन
होवे आजि जयी
जाहा मरिबार नहे ताहारे केमोने चापा दिवे
तव व्यंगवाणी ?
जे तपस्या सत्य तारे केह बाधा दिवे ना त्रिदिवे
निश्चय से जानि

हे राजतपस्वी वीर , तोमार से उदार भावना
विधिर भाण्डारे
संचित हइया गेछे, काल कभू तार एक कणा
पारे हरिबारे ?
तोमार से प्राणोत्सर्ग, स्वदेशलक्ष्मीर पूजाघरे
से सत्यसाधन,
के जानीतो होय गेछे चिर यूग-यूगान्तर-तरे
भारतेर धन

सोचा था न मिथ्या इतिहास लिख विदेशियों ने
मिथ्या होंगे उनके वे प्रलाप,
उनके लेख से भी बड़ा लेख है विधाता का जो
आँकता है जग के पुण्य-पाप
छू नहीं सकते कभी मिथ्या आरोप उसे
कितनी भी चलें कुटिल चाल,
सत्य रहता है सदा दीप्त सूर्य के समान
तीनों लोकों में तीनों काल

नष्ट कर सकता नहीं काल यत्न लाख करे
अमर तुम्हारे वे विचार,
संचित है तुम्हारी कीर्ति-कथा लोक-मानस में
कण भी होगा न कभी क्षार
पालन राष्ट्रधर्म का , तुम्हारा आत्मत्याग, तप
साधना स्वराज्य की कठोर
भूलेगा न विश्व कभी, हे तपस्वी वीर, तुमने
धर्म-हित सहे जो कष्ट घोर

अख्यात अज्ञात रहि दीर्घकाल, हे राजवैरागी ,
गिरिदरितले
वर्षार निर्झर यथा शैल विदारिया उठे जागि
परिपूर्ण बले,
सेइमतो बाहिरेले-विश्वलोक भाविलो विस्मये,
याहार पताका
अम्बर आछन्न करे, एतोकाल एतो क्षुद्र हये
कोथा छिलो ढाका

सेइमतो भावितेछि, आमि कवि ए पूर्व-भारते,
की अपूर्व हेरि,
बंगेर अंगनद्वारे केमोने ध्वनिलो कोथा होते
तव जयभेरि
तिन शत वत्सरेर गाढतम तमिस्र विदारि
प्रताप तोमार
ए प्राचीदिगन्ते आजि नवतर की रश्मि प्रसारि
उदिलो आबार

दीर्घकाल तक गिरि-गुहा-लीन निर्झर ज्यों
सोया हुआ निद्रा में प्रगाढ़,
वर्षा का जल पाकर होता है प्रकट सहसा
अवरोधक शिला का वक्ष फाड़
वैसे ही विस्मित होकर देखता है जग उसको
जाग रहा सोया था जो देश,
कैसे निज लुप्त हुए गौरव को याद कर वह
नवयुग में करता है प्रवेश

उसी प्रकार सोचता मैं, भारत के पूर्व में है
यह अपूर्व दृश्य दिखा आज,
महाराष्ट्र देश से प्रविष्ट हुआ बंग-भू में
तेज वह तुम्हारा महाराज
तीन-तीन सदियों का गहन अन्धकार चीर
बाल रवि-रश्मि-सा प्रचण्ड
प्रकट हुआ है वही क्षात्रबल तुम्हारा आज
स्वप्न लिए भारत का अखण्ड

मरे ना, मरे ना कभू सत्य याहा शत शताब्दिर
विस्मृतिर तले
नाहि मरे उपेक्षाय, अपमाने ना हय अस्थिर,
आघाते ना टले
यारे भेबेछिलो सबे कोन काले हयेछे नि:शेष
कर्मपरपारे,
एलो सेइ सत्य तव पूजा अतिथिर धरि वेश
भारतेर द्वारे

आजउ तार सेइ मन्त्र सेइ तार उदार नयान
भविष्येर पाने
एकदृष्टे चेये आछे, सेथाय से की दृश्य महान्
हेरिछे के जाने
अशरीर हे तापस, शुधू तव तपोमूर्ति लये
आसियाछो आज
तबू तव पूरातन सेइ शक्ति आनियाछो बये,
सेइ तव काज

मरता नहीं, मरता नहीं, सत्य रहकर भी छिपा
सदियों की विस्मृति में विलीन,
होता नहीं मलिन उपेक्षा, अपमान से वह
बन्धनों से होता नहीं क्षीण
कल्पना तुम्हारी मान लिया नि:शेष हुई
कर्म की नदी को कर पार
सत्य पर तुम्हारा वही, अतिथि का वेश धरे
आया फिर भारत के द्वार

आज भी तुम्हारी वही मूर्ति लिए नेत्र दिव्य
भावी में गड़ाये निज दृष्टि
जाने क्या महान दृश्य देख-देख आँक रही
फिर से विलुप्त निज सृष्टि
हो भी अशरीरी तुम किन्तु लोकमानस में
अंकित है तुम्हारी वह मूर्ति,
रचे लक्ष्य उन्नत जो, साहस, बल, पौरुष नव
भर दे प्राणों में नयी स्फूर्ति

आजि तव नाहि ध्वजा, नाहि सैन्य रण-अश्वदल
अस्त्र-खरतर
आजि आर नाहि बाजे आकाशेर करिया पागल
'हर हर हर'
शुधू तव नाम आजि पितृलोक हते एलो नामि,
करिलो आह्वान
मूहूर्ते हृदयासने तोमारेइ बरिलो, हे स्वामी,
बांगालिर प्राण

ए कथा भावे नि केह ए तिन-शताब्द-काल करि
जाने नि स्वप्ने
तोमार महत् नाम वंग-माराठारे एक करि
दिबे बिना रणे,
तोमार तपस्यातेज दीर्घकाल करि अंतर्धान
आजि अकस्मात्
मृत्यूहीन वाणी-रूपे जानि दिबे नूतन परान
नूतन प्रभात

न तो आज ध्वजा है तुम्हारी, न तो सैन्यबल
न तो हैं वे आज तीक्ष्ण अस्त्र,
गूँजता नहीं है नभमण्डल में 'हर हर' शब्द
लुप्त हो चुके हैं सभी शस्त्र
आज पितृलोक से तुम्हारा दिव्य नाम फिर भी
जन-जन को करता आह्वान,
करने हृदयासन पर वरण तुम्हें महाराज
आतुर हैं बंग-भू के प्राण

सोचा भी नहीं था कभी तीन-तीन सदियों बाद
फिर से बनेगा ऐसा योग,
लड़े बिना मिलेंगे बंगाल, महाराष्ट्र दोनों
साथी मान लेंगे उन्हें लोग
तपबल तुम्हारा दीर्घकाल से रहा जो लुप्त
रूप धरे फिर से अकस्मात्,
फिर से स्वतन्त्रता का मन्त्र देगा भारत को
रजनी से होगा फिर प्रभात

मारोठार प्रान्त हते एकदिन तुमि, धर्मराज,
डेकेछिले जबे
राजा ब'ले जानि नाइ, मानि नाइ, पाइ नाइ लाज
से भैरव रवे
तोमार कृपाणदीप्ति एकदिन जबे चमकिला
बंगेर आकाशे
से घोर दुर्योगदिने ना बूझिनू रुद्र सेइ लीला
लूकानू तरासे

मृत्यूसिंहासने आजि बसियाछो अमर मूरति
समून्नत भाले
ये राजकिरीट शोभे लूकाबे ना तार दिव्यज्योति
कभू कोनोकाले
तोमारे चिनेछि आजि. चिनेछि चिनेछि हे राजन्,
तूमि महाराज
तव राजकर लये आठ कोटि बंगेर नन्दन
दाँड़ाइबे आज

उस दिन जब महाराष्ट्र-गिरि-शिखरों से
तुमने था पुकारा महाराज,
सुनी भी न हाय ! रणभेरी बंग-भू ने उस दिन जब
अस्वीकृति में आई थी न लाज
तुम्हारी कृपाण की प्रभा से एक दिन जब
चमक उठा था बंग-प्रान्त,
फिर भी दुर्योगवश नहीं समझ पाया उस दिन
निद्राकुल रहकर सतत भ्रांत

मृत्युसिंहासन पर उन्नत किये निज दीप्त भाल
मूर्ति अमर रही जो विराज
उसके राजमुकुट की ज्योति दिव्य शोभामयी
भुला न सकेगा वह आज
जान चुका, मान चुका, तुम्हें पहिचान चुका
वह अब हे राजाधिराज,
आश्रय में तुम्हारे राजदण्ड के ही होंगे खड़े
आठ कोटि बंग-जन आज

सेदिन शूनी नि कथा -- आज मोरा तोमार आदेश
शिर पाती लव
कण्ठे-कण्ठे वक्षे-वक्षे भारते मिलिबे सर्वदेश
ध्यानमन्त्रे तव
ध्वजा करि उड़ाइबो वैरागीर उत्तरीय वसन
दरिद्रेर बल
'एकधर्मराज्य हबे ए भारते' ए महावचन
करिबो सम्बल

माराठिर साथे आजि, हे बांगाली, एक कण्ठे बोलो
'जयतु शिवाजी'
माराठिर साथे आजि, हे बांगाली, एक संगे चलो
महोत्सवे साजि
आजि एक सभातले भारतेर पश्चिम-पूरब
दक्षिणे उ बामे
एकत्रे करुक भोग एकसाथे एकटि गौरव
एक पूण्य नामे

उस दिन सुना न तुम्हें किन्तु तुम्हारे ही साथ
नवयुग में करेगा अब प्रवेश,
कंठ में, हृदय में महामुक्ति-मन्त्र दोगे तुम्हीं
एक होगा अब भारत देश
भगवा जय-ध्वजा ही तुम्हारी फहरेगी आज
देती दुःख, दैन्य से विमुक्ति,
'एक धर्मराज्य होगा भारत-भू पर समस्त'
होगी सच तुम्हारी कही उक्ति

सुर में सुर मिलाकर मराठों के बंगवासी आज
बोलो शिवाजी की जय-जयकार,
उनके ही पग से पग मिलाकर चलो साथ-साथ
करने दासता का तिमिर पार
आज एक साथ जुटें भारत के लोग सभी
पूरब, पश्चिम, दक्षिण और वाम,
एक साथ भोग करें सुख-दुःख का, गौरव से
लेते हुए वही पुण्य नाम

अशेष

आबार आह्वान
यत किछु छिलो काज
सांग तो करेछी आज
दीर्घ दिनमान ।

जागाये माधवीवन
चले गेछे बहु क्षण
प्रत्यूष नवीन,
प्रखर पिपाशा हानि
पूष्पेर शिशिर टानि
गेछे मध्यदिन,
माठेर पश्चिम शेषे
अपराह्न म्लान हेसे
होलो अवसान
परपारे उत्तरिते
पा दियेछी तरनीते
तबूउ आह्वान ?

अशेष

कार्य जो दिए थे कभी,
पूरा कर चुका मैं सभी.
दिन भर खट भूत के समान
मुक्ति को विकल हैं प्राण,
डूब रहा अंशुमान,
अब भी यह तुम्हारा आह्वान !

सुप्त मधुबन को जगा,
उषा हो चुकी है विदा
ज्योतिमय बनाती दिशाकाश
फूलों का चुरा पराग,
मध्य दिन भी गया भाग,
ओस के कणों से बुझा प्यास

हाट के पश्चिम कुवेश,
शेष दिन हो गया शेष,
मैंने निज विरामसमय जान,
छोड़ पार तक आ नाव,
तट पर धरे ही हैं पाँव,
अब भी तुम्हारा यह आह्वान !

नामे संध्या तन्द्रालसा
सोनार आँचलखसा
हाथे दीपशिखा
दिनेर कल्लोल 'पर
टानि दिलो झिल्लिस्वर
घन यवनिका ।
उ पारेर कालो कूले
कालि घनाइया तूले
निशार कालिमा,
गाढ़ से तिमिर-तले
चक्षू कोथा डूबे चले
नाहि पाय सीमा ।
नयनपल्लव 'परे
स्वप्न जड़ाइया धरे
थेमे जाय गान,
क्लांति टाने अंग मम
प्रियार मिनति सम
एखनो आह्वान ?

संध्या तन्द्रा से भरी,
स्वर्ण वसन में उतरी,
कर में रवि का लिए प्रदीप
कोलाहल गया ठहर,
गूँज रहा झिल्ली-स्वर,
मौन हुए घरों के समीप

तम ने नभ लिया घेर,
दृष्टि जिधर भी लूँ फेर,
कुछ भी दिखता न आर-पार
निशि का फैला दुकूल,
ढँकता सरिता के कूल,
छाया दिशाओं में अंधकार

पूरे कर दिन के काम,
आपस में हाथ थाम,
फिरते कृषक गाते हुए गान
निद्राकुल, क्लांत, अलस,
सुनता प्रिया-विनय सदृश,
अब भी मैं तुम्हारा आह्वान !

रे मोहिनी, रे निष्ठुरा,
उरे रक्त-लोभातुरा
कठोर स्वामिनी
दिन मोर दीनू तोरे
शेष नीते चास ह'रे
आमार यामिनी ?
जगते सबारइ आछे
संसार सीमार काछे
कोनोखाने शेष
केनो आसे मर्मच्छेदि
सकल समाप्ति भेदि
तोमार आदेश।
विश्वजोड़ा अंधकार
सकलेरइ आपनार
ऐकलार स्थान
कोथा होते तारा माझे
विद्यूतेर मतो बाजे
तोमार आह्वान ।।

ओ मेरी स्वामिनी निठुर,
ओ री ! रक्त-लोभातुर,
निशि में दो सभी को विराम
कर्म दो मुझे ही घोर,
जिस पर चले न जोर,
सेवा में रहूँ मैं आठों याम
दिए बिना पल विराम,
निशि में भी मुझी से काम,
नहीं जिससे मुक्ति का उपाय
दिनभर रख सेवा-लीन,
मेरी रात भी लो छीन,
यही है तुम्हारा, देवि ! न्याय !
जग में कोटि-कोटि दास,
खड़े चरणों के पास,
पाते हैं तुम्हारी कृपा-कोर
कर मुझी पर दृष्टि वाम,
दिया है क्यों ऐसा काम,
जिसका नहीं कोई ओर-छोर !
करते सुख-शान्ति भोग,
मुक्त निज घरों में लोग,
होता ज्यों ही दिन का अवसान
आता भरे जग के पार,
मुझ ही अकेले के द्वार
तड़ित् सा अब भी यह आह्वान !

दक्षिण समुद्रपारे
तोमार प्रासादद्वारे
हे जाग्रत रानी,
बाजे ना कि संध्याकाले
शांतसुरे क्लांततालें
बैराग्येर बानी ?
सेथाय कि मूक बने
घूमाय ना पाखीगने
आँधार शाखाय ?
तारागुलि हर्म्य-शीरे
उठे ना कि धीरे धीरे
नि:शब्द पाखाय?
लताबितानेर तले
बिछाय ना पूष्पदले
निभृत शयान ?
हे अश्रांत शांतिहीन
शेष होए गेलो दिन
एखनो आह्वान ?

दक्षिण सागर के पार,
तुम्हारे भवन के द्वार,
हे महा-महिमामयी रानी!
संध्या-वेला में क्लांत,
गूँजती नहीं है शांत,
क्या कभी विरागमयी वाणी!

दिन-भर के थके फूल,
तरु पल्लवों में झूल,
सोते नहीं होती जब रात!
वहाँ भवनों के पास,
उठती न क्या सहास,
सेवा-मुक्त तारकों की पाँत!

पंछी डालियों से लगे,
निशि में भी रहते जगे,
छेड़ते निरंतर नयी तान!
हे कठोर! हे निर्दयी!
दिन की अवधि बीत गयी,
अब भी यह तुम्हारा आह्वान!

रहिलो रहिलो तबे
आमार आपन सबे
आमार निराला,
मोर संध्यादीपालोक
पथ चाउया दूटि चोख,
यत्नेगाँथा माला।
खेयातरी याक बये
गृह-फेरा लोक लये
उ पारेर ग्रामे,
तृतियार क्षीण शशि
धीरे पड़े याक खशि
कुटिरेर वामे।
रात्रि मोर, शांति मोर,
रहिलो स्वप्नेर घोर,
सुस्निग्ध निर्वाण
आबार चलिनू फिरे
बहि क्लांत नतशिरे
तोमार आह्वान ।।

नष्ट हो चुके हैं अब,
मुझे तो प्रिय थे जो सब,
मेरा घर, एकांत, मेरी शान्ति,
मेरा यत्न-ग्रथित हार,
मेरे नयन भरे प्यार,
मेरे सांध्य-दीपकों की कान्ति

चंद्र तृतीया का क्षीण,
थकित-वदन, ज्योति-हीन,
ढल रहा कुटीर की ले आड़
श्रमिक मुक्त चढ़े नाव,
लौट रहे अपने गाँव,
हाट-बाट हो रहे उजाड़

मेरी शान्तिभरी रात,
अब है स्वप्न की-सी बात,
नत-मुख छाया-मूर्ति के समान,
हारा-थका, सब कुछ गवाँ,
मैं तो फिर लौट रहा,
सिर पर लिए तुम्हारा आह्वान !

बोलो तबे कि बाजाबो
फूल दिये कि साजाबो,
तव द्वारे आज
रक्त दिये कि लिखिबो,
प्रान दिये कि शिखिबो,
कि करिबो काज ?
यदि आँखि पड़े ढुले
श्लथ हस्त यदि भूले
पूर्व निपुनता
वक्षे नाहि पाई बल
चक्षे यदि आसे जल
बेधे जाय कथा
चेयो नाको घृणाभरे
कोरो नाको अनादरे
मोरे अपमान
मने रेखो हे निदये
मेनेछिनु असमये
तोमार आह्वान ।।

बोलो तब मैं क्या बजाऊँ !
फूलों से कैसे सजाऊँ !
देवि ! अब तुम्हारा सिंह-द्वार
रक्त से लिखूँ क्या गीत,
प्राण दे करूँ क्या प्रीत !
सेवा भी करूँ मैं किस प्रकार !

आँखों में पड़ी हो धूल,
कम्पित कर करें जो भूल,
पहले सी निपुणता हो न शेष
बाहों में रहे न बल,
आँखों से बहे जो जल,
पूर्व शक्ति का मिले न लेश

घृणा-रोष से भर कर,
कर देना न अनादर,
मेरी रचना को तुच्छ मान
रखना ध्यान में यह सदा,
असमय था मान लिया,
देवि ! मैंने तुम्हारा आह्वान !

सेवक आमार मतो
रयेछे सहस्र-शत
तोमार दुयारे
ताहार पेयेछे छुटि,
घूमाय सकले जुटि
पथेर दू धारे।
शुधू आमि तोरे सेवि
बिदाय पाइ ने देवि,
डाको क्षने-क्षने।
बेछे नीले आमारेइ
दुरूह सौभाग्य सेइ
बहि प्राणपने।
सेई गर्वे जागी रबो
सारा रात्रि द्वारे तव
अनिद्रनयान
सेई गर्वे कंठे मम
बहि बर-माल्य-सम
तोमार आह्वान ।।

सेवक मुझ-से अपार,
रहते जो तुम्हारे द्वार
गिना भी न जाए जिनका नाम
निशि में हो कार्य मुक्त,
होते न फिर से नियुक्त,
सोते सभी घर जा पूर्णकाम
जाने क्या मुझी में देख,
उनमें से मुझे ही एक
फिर-फिर तुम रही हो पुकार
क्यों न पा यह भाग्य बड़ा,
द्वार पर रहूँ मैं खड़ा,
श्रम से न मानूँ कभी हार?
सब में से मुझे चुन कर,
सेवा का दिया अवसर,
भूलूँ कैसे यह कृपा विशेष,
इसी गर्व से जागृत,
कर्मरत रहूँगा सतत,
निशि में भी न होगा मुझे क्लेश
मुझे निजी दास बना,
दिया जो यह स्नेह घना,
अपना सौभाग्य इसे मान
वर-माला सदृश क्षण-क्षण,
ढोऊँगा अनिद्र-नयन
देवि तुम्हारा यह आह्वान !

होबे, होबे, होबे जय-
हे देवी, करि ने भय,
होबे आमि जयी।
तोमार आह्वान-बानी
सफल करिबो रानी,
हे महिमामयी।
काँपिबे ना क्लांत कर,
भाँगिबे ना कंठ-स्वर
टूटिबे ना बीना
नवीन प्रभात लागि
दीर्घ रात्रि रबो जागि,
दीप निविबे ना।
कर्मभार नव प्राते
नव सेवकेर हाते
करि जाबो दान
मोर शेष कंठस्वरे
जाइबो घोषणा करे
तोमार आह्वान ॥

होगी जय, होगी जय,
हे देवी ! करो न भय,
निश्चय ही होगी मेरी जीत
तुम्हारी आह्वान-वाणी,
सफल करूँगा रानी !
रच-कर नित नए-नए गीत

काँपेंगे न क्लांत कर,
टूटेगा न कंठ-स्वर,
वीणा-ध्वनि होगी नहीं मंद
होने तक नव-प्रभात,
जाग बिता दूँगा रात,
बाँधता सुरों में नए छंद

नए भृत्य को पाकर,
प्रात: नयी लय से भर,
सौंप दूँगा जय का यह निशान
मेरा शेष कंठ-स्वर,
जायेगा घोषणा कर,
देवी ! यह तुम्हारा आह्वान !

भैरवीगान

उगो, के तूमि बोसिया उदास मुरति विषाद शांत शोभाते !
उई भैरवी आर गायो नाको एई प्रभाते
मोर गृहछाड़ा एई पथिक परान तरून हृदय लोभाते ।।

उई मन-उदासीन उई आशाहीन उई भाषाहीन काकली
देय ब्याकुल परशे सकल जीवन विकली ।
देय चरने बाँधिया प्रेमबाहू-घेरा अश्रुकोमल शिकलि ।
हाय मिछे मने होय जिवनेर ब्रत, मिछे मने होय सकलई ।।

यारे फेलिया एसेछि, मने करि, तारे फिरे देखे आसि शेषबार ।
उई काँदिछे से जेनो एलाये आकुल केशभार ।
यारा गृहछाए बशी सजल नयन मूख मने पड़े से-सबार।।

एयि संकटमय कर्मजीवन मने होय मरू साहारा,
दूरे मायामय पूरे दितेछे दैत्य पाहारा ।
तबे फिरे जाउया भालो ताहादेर पाशे पथ चेये आछे याहारा ।।

भैरवीगान

तू कौन, प्रात की करुण विदा की बेला में
कर मुख उदास, भैरवी लगी सन्मुख गाने
मेरे गृहत्यागी मन को सुर ये बेध रहे
ढीले होते जाते संकल्पों के ताने

यह भाषाहीन निराशामय स्वरलहरी सुन
मुझको अपनी साधनादिशा मिथ्या लगती
कस अश्रुअर्गला मेरे गतिमय पाँवों में
यह चेतनता को मोहक रंगों से रँगती

जो मुक्तकुंतला, बेसुध भू पर सिसक रही
मैं घर में जिसे बिलखता छोड़ चला आया
जी करता है अब उड़कर उसके पास पहुँच
मैं गले लगा लूँ फिर वह शीर्ण, मलिन काया

जलहीन मीन-सी मेरी प्रिया विकल होगी
कैसे काटेगी अब वह एकाकी जीवन
वह कक्ष जहाँ वीणाध्वनि गूँजा करती थी
मैं सुनता हूँ अब उससे आता हुआ रुदन

सेई छायाते बसिया सारा दिनमान, तरुमर्मर पवने,
सेई मूकूल आकूल वकूल कुंजभवने,
सेई कूहूकूहरित बिरहरोदन थेके थेके पशे श्रवने ।।

सेई चिरकलतान उदार गंगा बहिछे आँधारे आलोके,
सेई तीरे चिरदिन खेलिछे बालिका-बालके ।
धीरे सारा देह जेनो मूँदिया आशिछे स्वप्नपाखिर पालके ।।

हाय, अतृप्त यत महत् वासना गोपनमर्मदाहिनी,
एई आपनामाझारे शुष्क जीवन-वाहिनी ।
उई भैरवी दिया गाँथिया-गाँथिया रचिबो निराशा काहिनी ।।

सदा करुन कंठे काँदिया गाहिबे, "होलो ना, किछूई होबे ना ।
एई मायामय भवे चिरदिन किछू रबे ना
के जीवनेर जत गुरुभार व्रत धूलि होते तूलि लबे ना ।।

यह किस छलनामय मरुप्रदेश में आया मैं
लगता ज्यों कोई दैत्य यहाँ है पहरे पर
क्या पा लूँगा इस कठिन कर्मपथ पर चलकर !
क्यों छोड़ा मैंने अपना शांतिप्रेममय घर !

वह घर मेरा था कितना, आह ! सुखद जिसमें
पत्नी के थे मृदु वचन ताप मन का हरते
मैं चिंता-मुक्त जहाँ दिन काटा करता था
अब पीड़ा होती है जिसकी स्मृति भी करते

शिशु जहाँ खेलते आँगन में थी चहल-पहल
मित्रों का जमघट, होता हास्य-विनोद जहाँ
वे राग-रंग, वे प्रेम और ममता के स्वर
पाऊँगा अब मैं वह सुख, वह उल्लास कहाँ !

जीवन में हैं अतृप्त वासनाएँ कितनी !
जो स्वप्न अधूरे, क्या पूरे कर पाऊँगा!
अब उन्हें बाँधकर सुर में इसी भैरवी के
लौटूँगा मैं, अब और न आगे जाऊँगा

'यदि काज नीते होय कत काज आछे, एका कि पारिबो करिते !
काँदे शिशिर-बिंदु जगतेर तृषा हरिते !
केनो अकूल सागरे जीवन सोंपिबो एकेला जीर्ण तरीते ।।

'शेष देखिबो पड़िलो सुखयौवन फूलेर मतन खसिया
हाय वसंतवायु मिछे चले गेलो श्वसिया,
सेई जेखाने जगत् छीलो एक काले सेईखाने आछे बसिया ।।

"शुधू आमार जीवन मरिलो झरिया चिर जीवनेर तियासे ।
एई दग्ध हृदय एतो दिन आछे की आशे !
सेई डागर नयन, सरस अधर गेलो चलि कोथा दिया से !'

उगो, थामो, यारे तूमि बिदाय दियेछो तारे आर फिरे चेयो ना ।
उई अश्रुसजल भैरवी आर गेयो ना
आजि प्रथम प्रभाते चलिबार पथ नयनवाष्पे छेयो ना ।।

मुझ-से कितने ही लोग गए श्रम कर-कर के
कुछ हुआ न अब तक और न कुछ भी होना है
जग में कुछ कर दिखलाने की यह आकांक्षा
चींटी के मस्तक पर हिमगिरि को ढोना है

हैं कार्य अमित क्या कर लूँगा मैं एकाकी !
मैं तुहिन-बिंदु, कैसे जगतृषा मिटाऊँगा !
निज जीवन के वासंती दिवस गँवाकर भी
इस जग को वैसे का वैसा ही पाऊँगा

जगतृषातृप्ति-हित क्यों दूँ खपा स्वयं को मैं !
वह बुझी कभी, लोगों ने कितना यत्न किया !
वे सजल नयन, वे सरस अधर हैं बुला रहे
जाऊँगा मैं तो जहाँ बसी है प्राण-प्रिया

पर, हाय ! करूँ क्या ! इधर भैरवी खींच रही
हैं उधर कठिन संकल्प लिए जो सेवा के
मैं कितना भी रोऊँ, मन कितना भी तड़पे
अब लौट न पाऊँगा पर इस पथ पर आके

उई कुहक रागिनी एखोनि केनो गो पथिकेर प्रान बिवशे
पथे एखोनो उठिबे प्रखर तपन दिवसे
पथे राक्षसी सेई तिमिर रजनी ना जानि कोथाय निवसे

थामो, शुधू एकबार डाकि नाम तार नवीन जीवन भरिया,
जावो यार बल पेये संसारपथ तरिया
यत मानवेर गुरु महत् जनेर चरन-चिह्न धरिया ।।

याऊ ताहादेर काछे घरे यारा आछे पाषाने परान बाँधिया,
गाउ तादेर जीवने तादेर वेदने काँदिया ।
तारा पड़े भूमितले, भासे आँखिजले निज साधे बाद साधिया ।।

हाय, उठिते चाहिछे परान, तबूउ पारे ना ताहारा उठिते ।
तारा पारे ना ललित लतार बाँधन टूटिते
तारा पथ जानियाछे, दिवानिशि तबू पथ-पाशे रहे लूटिते ।।

अब लाख लुभाएँ स्वर ये मुझे भैरवी के
पथ कितना भी दुर्गम हो अंत न ज्ञात मुझे
पर मन को दृढ़ कर चलते ही जाना होगा
ले घेर भले ही आगे काली रात मुझे

हो चुका विदा जिनसे न उन्हें अब याद करूँ
यह अश्रु-सिक्त भैरवी और मत गावो तुम
जो मेरी बिछुड़ी प्रिया सिसकती है घर में
हे गायक ! अब उसकी मत याद दिलावो तुम

अब बंद करो गायन मैं उनकी स्मृति कर लूँ
जिन गुरुजन से पाया यह नव जीवन का वर
कर्त्तव्य-मार्ग यह कितना भी हो कष्टभरा
मैं मुड़ न सकूँगा चल उनके पदचिह्नों पर

कितना है दुख, संताप-विकल यह जग सारा
मैं अब इसकी सेवा में दिवस बिताऊँगा
निज जीवन के सुख-भोगों की बलि दे कर ही
कुछ तो इसकी पीड़ा को कम कर जाऊँगा

तारा अलस वेदन करिबे यापन अलस रागिनी गाहिया,
रबे दूर आलो-पाने आबिष्टप्राने चाहिया।
उई मधूर रोदने भेसे जाबे तारा दिवस-रजनी बाहिया ।।

सेई आपनार गाने आपनि गलिया आपनारे तारा भूलाबे,
स्नेहे आपनार देहे सकरुण कर बूलाबे।
शूखे कोमल शयने राखिया जीवन घूमेर दोलाय दूलाबे ।।

उगो, एर चेये भालो प्रखर दहन, निठूर आघात चरने।
जाबो आजीवन काल पाषाणकठिन सरने।
यदि मृत्युर माझे निये जाय पथ शूख आछे सेई मरने ।।

दुःख भोग रहे जो अपने घर की सीमा में
संघर्ष सदा अपने मन से ही करते हैं
पाती न टूट पाँवों में लिपटी पुष्प-लता
है साध किन्तु साधना-सिद्धि से डरते हैं

सम्मुख पथ का आलोक चमकता है फिर भी
फूलों की शैय्या छूट न जिनसे पाती है
दे तर्क विविध संतुष्ट स्वयं को कर लेते
दुख जाते भूल, नींद जब सुख की आती है

उनके सुख-दुख का साथी बनकर, मैं उनको
मंगलमय जीवन का शुभ मार्ग दिखाऊँगा
हो यह सेवाव्रत कठिन, न छोड़ूँगा इसको
इस पथ पर मरने में भी सुख ही पाऊँगा

रात्रे उ प्रभाते

कालि मधूयामिनीते ज्योत्सनानिशीथे कुंज कानने शूखे
फेनिलोच्छल यौवनशूरा धरेछी तोमार मूखे ।

तुमि चेये मोर आँखि 'परे
धीरे पात्र लयेछो करे,
हेसे करियाछो पान चुम्बनभरा सरस बिम्बाधरे
कालि मधूयामिनीते ज्योत्सनानिशीथे मधूर आवेशभरे ।

तव अवगुंठनखानि
आमि खूले फेलेछिनू टानि,
आमि केड़े रेखेछिनू वक्षे, तोमार कमल कोमल पानि ।
भावे निमीलित तव यूगल नयन, मूखे नाहि छिलो बानी ।

आमि शिथिल करिया पाश
खूले दियेछिनू केशराश
तव आनमित मूखखानि
शूखे थूयेछिनू बूके आनि-
तुमि सकल सोहाग सयेछिले, सखी, हासि मूकूलितमूखे
कालि मधूयामिनीते ज्योत्सना-निशीथे नवीनमिलनशूखे ।।

रात और प्रभात

कल ज्योत्स्ना निशि में मैंने मधु ढाल प्रमत्त करों से
बाँहों में भर तुम्हें पात्र था लगा दिया अधरों से

फिरा मदिर दृग-कोर
देखा मेरी ओर
भाँप लिया हो जैसे तुमने मेरे मन का चोर

प्याला ले निज कर में
रिक्त किया पलभर में
मंद-मंद हँस झुका लिया सिर हर्षित भावविभोर

मुक्त हुआ चन्द्रानन
खो लज्जाअवगुंठन
मन का सुख कह गयी तुम्हारी मौन मदभरी चितवन

मैंने कर में ले ली
झुक सुकुमार हथेली
खींच वक्ष में तुम्हें सुगन्धित खोला वेणीबंधन

कल कितनी थी मुदित प्रिये !
तुम मेरे मधुर स्वरों से
कल ज्योत्स्ना निशि में मैंने मधु ढाल प्रमत्त करों से
बाहों में भर तुम्हें पात्र था लगा दिया अधरों से

आजि निर्मलबाय शांत उषाय निर्जन नदीतीरे
स्नानअवसाने शुभ्रवसना चलियाछो धीरे धीरे।

तुमि वाम करे लये साजि
कत तुलिछो पुष्पराजि,
दूरे देवालयतले उषार रागिनी बाँसिते उठिछे बाजि
एई निर्मलबाय शांत उषाय जाह्नवी तीरे आजि।

देवी, तव शिंखिमूले लेखा
नव अरुणसिंदूररेखा
तव वाम बाहु बेड़ी शंखवलय तरुन इंदुलेखा
ए कि मंगलमयी मूरति बिकाशि प्रभाते दियेछो देखा!

राते प्रेयसीर रूप धरि
तुमि एसेछो प्रानेश्वरी,
प्राते कखन देवीर बेशे
तुमि समूखे उदिले हेसे –
आमि संभ्रमभरे रयेछि दाँड़ाये दूरे अवनत शिरे
आजि निर्मलबाय शांत उषाय निर्जन नदीतीरे ।।

आज प्रभात समय तुम करके स्नान नदी के तट से
चली आ रही हो मंथरगति सज्जित उज्जवल पट से

बाएँ कर से थामे
विकच पुष्प डलिया में
सुनती मंदिर की वंशी-ध्वनि गुंजित पूर्व दिशा में

तम में रविकरलेखा
सिर सिंदूरी रेखा
शंखवलय मिस अर्ध चंद्र ज्यों लिपटा वाम भुजा में

रात प्रेयसी बन कर
आयी थी शय्या पर
देवी की-सी दिव्य विभा में आज बनी लोकोत्तर

देख रहा विस्मित बन
मैं यह छविपरिवर्तन
प्रिये ! रूप कैसा अद्भुत यह तुमने आज लिया धर !

दूर-दूर दिखती कितना भी देखूँ आज निकट से
आज प्रभात समय तुम करके स्नान नदी के तट से
चली आ रही हो मंथरगति सज्जित उज्ज्वल पट से

अभिसार

संन्यासी उपगुप्त
मथूरा पूरीर प्राचिरेर तले एकदा छिलेन सुप्त ।
नगरीर दीप निवेछे पवने,
दूयार रूद्ध पौर भवने;
निशिथेर तारा श्रावनगगने घनमेघे अवलुप्त ।।

काहार नूपूर शिंजित पद सहसा बाजिलो बक्षे !
संन्यासीबर चमकि जागिलो,
स्वप्नजड़िमा पलके भाँगिलो,
रूद्ध दीपेर आलोक लागिलो क्षमासुन्दर चक्षे ।।

नगरीर नटी चले अभिसारे यौवनमदे मत्ता ।
अंगे आँचल सुनील वरन,
रूनूझूनू रवे बाजे आभरण,
संन्यासी गाये पड़िते चरन थमिलो बासवदत्ता ।।

प्रदीप धरिया हेरिलो ताहार नवीन गौरव कान्ति
सौम्य सहास तरून बयान,
करूणाकिरणे विकच नयान,
शुभ्र ललाटे इंदुसमान भातिछे स्निग्ध शान्ति ।।

अभिसार

संन्यासी उपगुप्त
एक बार प्राचीर निकट मथुरा के रहे सुसुप्त
दीप बुझे खा झंझा झोंके
बन्द हुए थे पट भवनों के
पावस निशि थी, तारे भी थे मेघों में अवलुप्त

सहसा आहट सुनी किसी नूपुरशिंजित पगतल की
चौंक, चकित जागा संन्यासी
टूटी नींद, देव-प्रतिमा-सी
दीपक-द्युति में एक गौर छवि शांत दृगों में झलकी

लौट रही थी नगरवधू मधुउत्सव से मदमत्ता
नीलाम्बरसज्जित कोमल तन
रुनझुन बजते थे आभूषण
संन्यासी पर पग लगते ही ठहरी वासवदत्ता

रख प्रदीप, देखी रमणी ने सन्मुख मोहक कान्ति
यौवनदीप्त गौर स्मित आनन
करुणा-स्नेह भरे युग लोचन
शुभ्र भाल पर इंदु-विभा-सी स्निग्ध तपोज्ज्वल शान्ति

कहिलो रमनी ललितकंठे, नयने जड़ित लज्जा,
"क्षमा करो मोरे, कूमार किशोर,
दया करो यदि गृहे चलो मोर
ए धरणीतल कठिन कठोर, ए नहे तोमार शय्या !"

संन्यासी कहे करूणवचने, "अयि लावण्यपुंजे !
एखनो आमार समय होये नी,
यथाये चलेछो जाओ तुमि धनी
समय ये दिन आसिबे आपनी याइबो तोमार कुंजे ।।"

सहसा झंझा तड़ित शिखाय मेलिलो बिपुल आश्य ।
रमनी काँपिया उठिलो तरासे,
प्रलयशंख बाजिलो बाताशे,
आकाशे बज्र घोर परिहासे हासिलो अट्टहास्य ।।

बर्ष तखनो होए नाइ शेष, ऐसेछे चैत्र संध्या ।
बातास होएछे उतला आकुल,
पथ तरुशाखे धरेछे मूकूल,
राजार कानने फुटेछे बकूल, पारूल, रजनीगंधा ।।

अति दूर होते आसिछे पवने बाँशिर मदिर मंद्र ।
जनहीन पुरी, पुरबासी सवे
गेछे मधुबने फूल-उत्सवे,
शून्य नगरी निरखि नीरवे हासिछे पूर्णचंद्र ।।

बोली तरुणी लाजभरी, सकुचाई स्नेहप्रणत हो
"क्षमा करो यदि, हे तापसवर !
चलो कृपा करके मेरे घर
शोभा देता नहीं शयन भू का यह कोमल तन को"

संन्यासी ने कहा, "आज तो मैं यह कष्ट न दूँगा
अभी न समय हुआ है मेरा
अभी तुम्हें जग ने है घेरा
जिस दिन होगा समय, देवि ! मैं आकर स्वयं मिलूँगा"

सहसा झंझानिल ने आकर कर का दीप बुझाया
भय छाया रमणी के मन में
वज्र-घोष-सा हुआ गगन में
अट्टहास कर नभ ने मानो निज परिहास जताया

नहीं वर्ष भी शेष हुआ था, चैत्र-पूर्णिमा आयी
गदराया तरुओं का यौवन
मंद पवन, फूले वन-उपवन
प्रात खिले पाटल, निशि में रजनीगंधा मुस्काई

आती थी सुदूर मधुवन से वंशी की ध्वनि मादक
छोड़ पुरी, पुरवासी सारे
थे मधु-उत्सव-हेतु सिधारे
एकाकी पूनो-शशि था सूनी नगरी का रक्षक

निर्जन पथे ज्योत्सनाआलोते संन्यासी एका यात्री।
माथार उपरे तरुवीथिकार
कोकिल कूहरि उठे बारबार,
एतदिन परे ऐसेछे कि तार आजि अभिसार-रात्रि ?

नगर छाड़ाये गेलें दंडी बाहिर प्राचीर-प्रान्ते।
दाँडालेन आसि परिखार पारे
आम्रवनेर छायार आँधारे
के उई रमनी पड़े एक धारे ताहार चरनोपांते ?

निदारूण रोगे मारी गूटिकाय भरे गेछे तार अंग।
रोगमसि-ढाला कालि तनू तार
लये प्रजागने पूर परिखार
बाहिर फेलेछे करि परिहार विषाक्त तार संग ।।

संन्यासी बसि आड़स्त शिर तुलि निलो निज अंके।
ढाली दिलो जल शुष्क अधरे ,
मन्त्र पड़िया दिलो शिरपरे"
ढाली दिलो देह आपनार करे शीत चंदनपंके ।।

झरीछे मूकूल, कूजिछे कोकिल, यामिनी जोछनामत्ता।
"के एसेछो तुमि उगो दयामय"
शुधाईलो नारी, संन्यासी कय
"आजि रजनीते होयेछे समय, आसेछि बासवदत्ता !"

निर्जन रजनी में संन्यासी था चल रहा अकेला
तम-पथ पर रुक-रुककर रह-रह
जाने किसे ढूँढता था वह
क्या इतने दिन पर आयी थी उसकी परिणय-वेला !

लाँघ पूरी, प्राचीर, गया वह दंडी पुर के बाहर
रुग्ण-गात तरु तले जहाँ पर
पड़ी एक नारी थी निःस्वर
ठहर गया वह लगते ही उसका लघु स्पर्श चरण पर

स्याह हुई उस नारी के तन पर उभरे थे दाने
जान उसे चेचक से पीड़ित
स्पर्श विषाक्त समझकर जनहित
पुर के बाहर उसे किया था शंकित राजसभा ने

संन्यासी ने बैठ, अंक में रोग-तप्त सिर रखकर
दिया ढाल मुख में शीतल जल
परस भाल पर दिया सुकोमल
चंदनलेप किया निज कर से उस दुखिया के तन पर

फूल झड़ रहे थे, गाती थी कोयल मधु-रस-मत्ता
"कौन दयामय हो तुम," सुनकर
बोला संन्यासी कोमल-स्वर
हुआ मिलन का समय आज, मैं आया वासवदत्ता

उर्वशी

नह माता, नह कन्या, नह वधू, सुंदरी रूपसी,
हे नंदनवासिनी उर्वशी !
गोष्ठे जबे संध्या नामे श्रांत देहे स्वर्नांचल टानि
तूमि कोनो गृहप्रान्ते नाही ज्वालो संध्यादीपखानि
द्विधाय जड़ित पदे कंपवक्षे नम्रनेत्रपाते
स्मितहास्ये नाहि चलो सलज्जित वासरशय्याते
स्तब्ध अर्धराते
उषार उदय-सम अनवगुन्ठिता
तूमि अकुंठिता

वृन्तहीन पूष्पसम आपनाते आपनि विकशि
कबे तूमि फूटिले उर्वशी
आदिम वसंतप्राते उठेछिले मंथित सागरे
डान हाते सूधापात्र, विषभांड लये वाम करे
तरंगित महासिंधू मंत्रशांत भूजंगेर मतो
पड़ेछिलो पदप्रान्ते उच्छवसित फणा लक्ष शत
करि अवनत
कून्दशुभ्र नग्नकान्ति सूरेन्द्रवन्दिता
तूमि अनिंदिता

उर्वशी

न तो माता हो, न वधू हो, न कन्या हो तुम हे रूपसी
नंदनवन-वासिनी उर्वशी !
आँगन में झुकती जब संध्या, श्रांत-वदन, मुख पर स्वर्णांचल ताने
दीपक जलाती नहीं कक्ष में किसीके तुम, फैल रहे तम से मुक्ति पाने
द्विधा से जड़ित-पद, कम्पित-वक्ष, लाजभरी पलकों को झुकाकर
जाती नहीं मंथर-गति, मंद मुस्कुराती हुई, किसीकी वासरशय्या पर
स्तब्ध आधी रात में बन-सँवर
उषा के उदय-सी अनवगुंठिता
तुम अकुंठिता

वृन्त-हीन पुष्प के समान कब आप अपने से ही विकसी
तुम अपूर्व सुन्दरी उर्वशी !
आदि वसंतप्रात में थी प्रकट हुई मंथित महासागर के तल से
दायें कर में सुधा-घट ले, बायें में घट भरा हलाहल से
क्षुब्ध महासिंधु मंत्र-कीलित भुजंग-तुल्य लक्ष-लक्ष फणों को पसारे
फुँफकारें भुला कर अपनी शांत हुआ, लोटता था चरणों में तुम्हारे
निकली जब मोहिनी रूप धारे
कुंद-शुभ्र, नग्नकान्ति, सुरेन्द्र-वन्दिता
तुम अनिंदिता

कोनो काले छिले ना कि मूकुलिका बालिकावयसि,
हे अनंतयौवना उर्वशी
आँधार पाथारतले कार घरे बसिया एकेला
मानिक मूकूता लये करेछिले शैशवेर खेला !
मणिदीपदीप्त कक्षे समूद्रेर कल्लोलसंगीते
अकलंक हास्यमूखे प्रवालपालंके घूमाइते
कार अंकटिते
जखनि जागिले विश्वे यौवनगठिता
पूर्णप्रस्फूटिता

यूग-यूगांतर होते तूमि शुधू विश्वेर प्रेयसी,
हे अपूर्वशोभना उर्वशी
मूनिगण ध्यान भाँगि देय पदे तपस्यार फल,
तोमारि कटाक्षपाते त्रिभुवनयौवन चंचल,
तोमार मदिर गंध अंधवायू बहे चारि भिते,
मधूमत्तभृंगसम मुग्ध कवि फिरे लुब्धचिते
उद्दाम संगीते
नूपूर गुंजरि जाऊ आकूलअंचला
विद्यूतचंचला

नहीं थी क्या तुम भी कभी मुकुलिका बालिका-वयसी
हे अनंत-यौवना उर्वशी !
गहन अतल के अँधेरे कक्ष में नीरव बालिका-सी बैठकर अकेली
माणिक-मोतियों से खेलती थी किसके घर में तुम बिना किसी संग या सहेली
मणि-दीपित कक्ष में प्रवाल-शय्या पर सुनती गीत सिंधु-ऊर्मियों के गाये
सोती थी भोली मुस्कान लिये रजनी में किसकी गोद में मुँह छिपाए
किसने भेद नृत्य के सिखाये
जगी जब तुम यौवन-मद-गठिता
पूर्णप्रस्फुटिता ?

युग-युगान्तर से अखिल विश्व की रही हो तुम्ही प्रेयसी
हे अपूर्व सुन्दरी उर्वशी !
मुनि-गण कर ध्यान भंग, अर्पण कर देते तुम्हे तपस्या के फल को
तुम्हारा कटाक्ष जगाता है यौवन-मद, चंचल कर देता है अचल को
तुम्हारी सुगंध लिये अंध वायु फिरती दिशाओं में गीत गाती
प्रेमभरी ध्वनियों से मधु-लुब्ध भ्रमर-तुल्य कवि को उन्मत्त है बनाती
चलती तुम छवि से मदमाती
नूपुर-शिंजित-चरण, आकुल-अंचला
विद्युत-चंचला

सूरसभातले जबे नृत्य करो पूलके उल्लसि,
हे विलोलहिल्लोल उर्वशी,
छंदे-छंदे नाचि उठे सिंधूमाझे तरंगेर दल,
शस्यशीर्षे सिहरिया काँपि उठे धरार अंचल,
तव स्तनहार होते नभस्थले खसि पड़े तारा,
अकस्मात् पूरूषेर वक्षोमाझे चित्त आत्महारा --
नाचे रक्तधारा
दिगंते मेखला तव टूटे आचम्बिते
अयि असम्वृते

स्वर्गेर उदयाचले मूर्तिमती तुमि हे उषसि,
हे भूवनमोहिनी उर्वशी !
जगतेर अश्रुधारे धौत तव तनूर तनिमा,
त्रिलोकेर हृदिरक्त आँका तव चरनशोणिमा ;
मुक्तवेणी विवसने विकशित विश्व वासनार
अरविन्दमाझखाने पादपद्म रेखेछे तोमार
अति लघूभार --
अखिल मानसस्वर्गे अनंतरंगिनी
हे स्वप्नसंगिनी

सुर-सभा-तल में जब नृत्य करती पुलकभरी, हुलसी
हे कल्लोल-हिल्लोलित उर्वशी
छंदों पर तुम्हारे नाच उठता सिंधु-तरंगों का दल है
शत-शत शस्य-शीश डुला नाचता धरा का अंचल है
छूते स्तन-हार को तुम्हारे तारे टूट-टूट गिरते हैं गगन से
नाचती पुरुष-धमनियों में रक्तधारा तीव्र उठती झंकार जब चरण से
दिशाओं में उन्मद नर्तन से
मेखला के मोती हैं बिखरते
अयि असम्वृते !

उदयाचल पर स्वर्ग के तुम मूर्तिमती उषा बन हँसी
हे भुवन-मोहिनी उर्वशी !
जग के आँसुओं से धुली अंगों की तुम्हारे है मधुरिमा
जग ने रक्त से अपने रँगी है तुम्हारी पद-अरुणिमा
मुक्तवेणी विवसना तुम विश्व-वासना के कमल-दल पर
रखती हो कोमल पद अपने अति लघु-भार, स्निग्ध, सुन्दर
जग को निज रूप से विसुध कर
मानस-स्वर्ग की अंतर-रंगिनी
हे स्वप्न-संगिनी !

उई शुनो दिशे दिशे तोमा लागि काँदिछे क्रंदसी,
हे निष्ठुरा बधिरा उर्वशी !
आदियुग पुरातन ए जगते फिरिबे कि आर –
अतल अकूल होते सिक्तकेशे उठिबे आबार ?
प्रथम से तनूखानी देखा दिबे प्रथम प्रभाते
सर्वांग काँदिबे तव निखिलेर नयनआघाते
वारिविंदूपाते !
अकस्मात् महाम्बूधि अपूर्व संगीते
रबे तरंगिते

फिरिबे ना, फिरिबे ना -- अस्त गेछे से गौरवशशि
अस्ताचलवासिनी उर्वशी !
ताई आजि धरातले वसंतेर आनंदउच्छ्वासे
कार चिरविरहेर दीर्घश्वास मिशे बहे आसे
पूर्णिमानिशीथे जबे दश दिके परिपूर्ण हासि
दूरस्मृति कोथा होते बाजाय व्याकुल-करा बाँशि
झरे अश्रुराशि
तबू आशा जेगे थाके प्राणेर क्रन्दने
अयि अवन्धने !

सुनो, रो रहा है जग तुम्हारे लिए, ओ अमरपुरी में बसी
निष्ठुर, वधिर, उर्वशी
फिरेगा वह आदियुग क्या फिर इस भूतल पर, जब मणिरत्नों से
सँवारी
अतल अकूल में से उठती हुई सिक्तकेशी प्रतिमा दिखेगी फिर तुम्हारी
पहले जैसी ही फिर दिखोगी क्या जग को तुम सद्यःस्नात आती
सिंधुतट से
जग की लुब्ध दृष्टि से विकल छिपाती हुई अपने अंगों को आर्द्र पट से
झाड़ वारि-बिंदु खुली लट से
अकस्मात् सागर की ध्वनि से अनुषंगिता,
होती तरंगिता

फिरेगा नहीं, फिरेगा नहीं, अस्त हो चुका है वह गौरव-शशि
अस्ताचल-वासिनी उर्वशी
इसीलिए तो आज भूतल पर गुंजित वसंत के भी आनंद-उल्लास में
जाने कैसी विरहव्यथा है छिपी करुणा की कसक भरी है साँस-साँस में
पूर्णिमा निशीथ में भी प्रेमियों की जोड़ी जब मद-मत्त प्रेम-गीत
गाती है
जाने किसकी स्मृतियाँ लिये दूरागत बाँसुरी की तान मन उन्मन
बनाती है
आँसुओं की झड़ी लग जाती है
फिर भी आशा है, फिरोगी दुख हरने,
अयि अबन्धने !

केनो जामिनी

केनो जामिनी ना जेते जागाले ना,
बेला होलो मरी लाजे ।
शरमे जड़ित चरणे केमोने
चलिबो पथेरी माझे ।।

आलोक परशे मरमे मरिया
हेरो गो शेफालि पड़िछे झरिया
कोनोमते आछे परान धरिया
कामिनी शिथिल साजे ।।

निबिया बाँचिलो निशार प्रदीप
उषार बातास लागि,
रजनीर शशी गगनेर कोणे
लूकाय शरण माँगि ।
पाखि डाकि बोले, 'गेलो विभावरी ',
वधू चले जले लईया गागरि ।
आमि ए आकूल कवरी आवरी
केमने जाईबो काजे ।।

रात रहते

रात रहते जगाया था क्यों न मुझे
जाऊँ कैसे दिन के प्रकाश में !
लाजो मरूँ लाँघते पथ रणित-चरण
जगे होंगे लोग आसपास में

आलोक-परस से मर्माहत होकर
झड़ चुकी देखो, शेफालिका भू पर
किसी विधि कामिनी धीरज रही धर
अब भी प्रिय-मिलन की आस में

बुझने से बचा है निशि का प्रदीप
प्रात-पवन-झोंकों से काँपता
पीत-मुख भीत शशि क्षितिज के समीप
अम्बर से शरण है माँगता

पंछी बोलते हैं, "बीती विभावरी "
वधुएँ चलीं घर जल से भरे गगरी
मैं कैसे निकलूँ लिए अनसँवरी कबरी
सिलवटभरे निशि के लिबास में

रात रहते जगाया था क्यों न मुझे
जाऊँ कैसे दिन के प्रकाश में !
लाजो मरूँ लाँघते पथ रणित-चरण
जगे होंगे लोग आस-पास में

जब थी रात

जब थी रात, नभ में था चाँद भी
जगाया था क्यों नहीं मुझे तभी
कैसे जाऊँ मैं अब ऐसे हाल में !

पसर रही बिंदी, खुली अलकें,
रह-रह झँपती अलस पलकें
नशा-सा है डगमगाती चाल में

जागे लोग रवि के उदय से,
पथ पर चलूँ भी अब कैसे !
मरूँ क्या न लोक-लाज भय से,
मछली-सी फँसी मैं तो जाल में

शेफाली दिन के आलोक से डरी,
छिपा रही मुख लाज से भरी
कामिनी जैसे-तैसे है ठहरी
पत्तों की ओट लिए डाल में

प्रात-पवन-झकोरों से झुककर
दीपशिखा जल रही है भूक्-भुक् कर
भीत शशि पश्चिम दिशा की ओर मुख कर
शरण–हेतु कूद गया ताल में

पक्षी पुकार रहे, "बीती विभावरी"
बधुएँ चलीं घर को जल से भर गगरी
कैसे मैं जाऊँ ! है अनसँवरी कबरी
काजल के दाग लगे गाल में

रात रहते जगाया था क्यों न मुझे
कैसे जाऊँ मैं अब ऐसे हाल में!

मूखपाने चेये देखि

मूखपाने चेये देखि, भय होय मने-
फिरेछो कि फेरो नाई बूझिबो केमोने ।।
आसन दियेछि पाति,
मालिका रेखेछि गाँथि,
बिफल होलो कि ताहा भावि खने खने ।।
गोधूलि लगने पाखि फिरे आसे नीड़े,
धाने भरा तरिखानि घाटे एसे भिड़े ।।
आजो कि खोंजार शेषे
फेरो नि आपन देशे ।
विरामबिहीन तृषा जले कि नयने ।।

* * * * * * *

मुख की छवि तो देखूँ

मुख की छवि तो देखूँ
मुक्ति हो भय से
आये कि न आये, बूझूँ यह कैसे !
आसन बिछा दिया है,
हार भी सजा लिया है
विफल हो न यह सारा, मन डोले संशय से
साँझ ढले पंछी नीड़ों में फिर आये
घाट पर लगीं आकर धानभरी नौकाएँ
आज पूरे भी हुए सपने
फिरो न देश अपने
विराम-विहीन तृष्णा गयी न हृदय से
मुख की छवि तो देखूँ
मुक्ति हो भय से
आये कि न आये, बूझूँ यह कैसे !

मुखछवि देखी आज तुम्हारी

मुखछवि देखी आज तुम्हारी, मन ही मन अकुलाऊँ
तुम आये या दिवास्वप्न है, यह भी समझ न पाऊँ

बड़े भाग पाहुन घर आये आसन नया बिछाया
अरमानों की माला गूँथी सारा साज सजाया

सब कुछ व्यर्थ हुआ-सा लगता, भय से अश्रु बहाऊँ
तुम आये या दिवास्वप्न है, यह भी समझ न पाऊँ

साँझ ढले नीड़ों को आतुर पंछी पंख पसारे
धानभरी नौकाएँ लौटीं, आकर लगी किनारे

तृष्णा का तो अंत नहीं, किस अन्वेषण में अटके !
बहुत हुआ ओ परदेशी, आओ निज देश पलट के

जीवन पल-पल बीत रहा, कैसे तुमको समझाऊँ !
तुम आये या दिवास्वप्न है, यह भी समझ न पाऊँ

(*प्रतिभा खंडेलवाल*)

एकदा तूमि प्रिये

एकदा तूमि, प्रिये ! आमारि ए तरुमूले
बसेछो फूलसाजे से कथा ये गेछे भूले ।।

सेथा ये बहे नदी निरवधि से भोले नि
तारि ये स्रोते आँका बाँका बाँका तव वेणी,
तोमारि पदरेखा आछे लेखा तारि कूले ।
आजि कि सबई फाँकी -- से कथा कि गेछे भूले ।।

गेंथेछो ये रागिनी एकाकिनी दिने दिने
आजि उ जाय व्येपे केंपे केंपे तृणे तृणे ।
गाँथिते ये आँचले छायातले फूलमाला
ताहारि परशन हरसन सुधा-ढाला
फाल्गुन आजो ये रे खूँजे फेरे चाँपाफूले ।
आजि कि सबई फाँकी -- से कथा कि गेछे भूले ।।

एकदा तूमि, प्रिये ! आमारि ए तरुमूले
बसेछो फूलसाजे से कथा ये गेछे भूले ।।

एक दिन तुम प्रिये

एक दिन तुम प्रिये, अलकों में सजे चंपा-फूल
बैठी थी मेरे तरुतले, वह मिलन क्या गयी भूल !

बहती थी यहाँ जो नदी निरवधि
नहीं क्या तुमको सुधि !
उसीने तुम्हारी आँकी, वेणी बाँकी-बाँकी
तुम्हारी पदरेखा, गति-लेखा,
अब भी है उसके कूल
आज क्या छल है सभी !
वह मिलन क्या गयी भूल !

गायी नित जो रागिनी, एकाकिनी, वन-वन में,
आज भी व्याप रही, काँप रही तृण-तृण में
गूँथी थी आँचल में, बैठी छायातल में जो फूलमाला
तुम्हारा आज भी वह परस, सरस, सुधारस-ढाला
फागुन ढूँढता फिर रहा
चंपई फूलों पर झुक, झूल
आज क्या छल है सभी !
वह मिलन क्या गयी भूल !

एक दिन तुम प्रिये, अलकों में सजे चंपा-फूल
बैठी थी मेरे तरुतले, वह मिलन क्या गयी भूल !

स्वर्ग सेई विदाय

म्लान होए एलो कंठे मंदारमालिका --
हे महेंद्र, निर्वापित ज्योतिर्मय टिका
मलिन ललाटे, पुरातन बल होलो क्षीण
आजि मोर स्वर्ग होते विदायेर दिन

हे देव, हे देविगण ! वर्ष लक्ष शत
यापन करेछी हर्षे देवतार मतो
देवलोके, आजि शेष विच्छेदेर क्षणे
लेश मात्र अश्रुरेखा स्वर्गेर नयने
देखे जाबो एही आशा छिलो. शोकहीन
हृदिहीन, सुख स्वर्गभूमि, उदासीन
चेये आछे , लक्ष लक्ष वर्ष तार
चक्षेर पलक नहे ; अश्वत्थ शाखार
प्रांत होते खसि गेले जीर्णतम पाता
यत टुकू बाजे तार, तत टुकू व्यथा
स्वर्गे नाही लागे, जबे मोरा शतशत
गृहच्युते, हृतज्योति नक्षतेर मतो
मूहूर्ते खसिया पड़ि देवलोक होते
धरित्रीर अंतहीन जन्ममृत्युलोके

स्वर्ग से विदा

मंद हुई कंठ की मंदारकुसुममाला है
पुँछ गया टीका भाल पर का ज्योतिवाला है
पुण्यबल है क्षीण और रुकना कठिन है
मित्रो, आज मेरा स्वर्ग से विदा का दिन है

भोग करते स्वर्ग के सुख ,मैंने एक लाख वर्ष
रहकर देव तुल्य ही बिताये हैं यहाँ सहर्ष
आशा थी कि मेरे स्वर्ग से विदा के क्षण में
देखूँगा मैं अश्रु देवताओं के नयन में

किन्तु देखता हूँ आत्मलीन वे हृदयहीन
देख रहे ऐसे मुझे देखा हो जैसे कभी न
पीड़ा बिछुड़ने की मेरे सालती उन्हें नहीं
अपने सुख विनोद में लगे थे जहाँ, हैं वहीं

पलकें भी न उनके, दिख ही जाता अश्रु आँख का
मोह यदि होता साथ बीते वर्ष लाख का
जीर्णतम पीपल का पत्र भी झड़े कहीं
दुख होता जितना उसे, उतना भी दुख नहीं
देवों के हृदय में है, उनकी मंडली से छूट
भू पर जा रहा हूँ जब मैं तारे-सा गगन से टूट

से वेदना बाजितो यद्यपि, विरहेर
छायारेखा दितो देखा, तबे स्वर्गेर
चिरज्योति म्लान होते मर्त्येर मतन
कोमल शिशिरबाष्पे ; नंदनकानन
मर्मरिया उठितो निश्वसिया ; मंदाकिनी
कूले-कूले गेये जेतो करूण काहिनी
कलकंठे ; संध्या आसि दिवाअवसाने
निर्जन प्रांतरपारे दिगंतेर पाने
चले जेतो उदासिनी ; निस्तब्ध निशीथ
झिल्लीमन्त्रे शुनाइतो वैराग्यसंगीत

नक्षत्रसभाय माझे माझे सूरपूरे
नृत्यपरा मेनकार कनकनूपूरे
तालभंग होतो. हेलि उर्वशीर स्तने
स्वर्णवीना थेके थेके येनो अन्यमने
अकस्मात झंकारितो कठिन पीड़ने
निदारुण करूण मूर्छना, दितो देखा
देवतार अश्रुहीन चोखे जलरेखा
निष्कारणे, पतिपाशे बसि एकासने
सहसा चाहितो शची इंद्रेर नयने
येन खुँजि पिपासार वारि, धरा होते
माझे माझे उच्छ्वसि आसितो वायू स्रोते
धरणीर सुदीर्घ निश्वास -- खसि झरि
पड़ितो नंदनवने कूसूममंजरी

मुझ से बिछुड़ने का दुख जो देवों को भी होता आज
मानवों-सा साश्रुदृग विदाई देता सुरसमाज
नंदनकानन भरता उसाँस शोकमय सुर में
मंदाकिनी बहती ले व्यथा की तान नूपुर में

संध्या उदासी से भरी होते ही दिवस का अंत
चली जाती म्लानमुखी शोकमय बना दिगंत
रजनी छिपा लेती अश्रु तारों की सभा के बीच
झिल्ली के स्वरों से देती वन को आँसुओं से सींच

पलकों से सुरेन्द्र के भी आज मुझे जाते देख
गाल पर ढुलक पड़ती मोती की-सी बूँद एक.
इन्द्रसभा बीच जहाँ होता सदा रासरंग
सहसा नृत्यलीन मेनका का होता तालभंग.

मदमत्त उर्वशी गले से लगी वीणा पर
गाती प्रेमगीत जब सुरों में मधुर तानें भर
एकाएक आती उनसे व्यथा भरी ऐसी धुन
फूट ही पड़तीं मन की दबी सिसकियाँ करुण

बैठी पतिपार्श्व में शची भी उठा मुख सहास
ढूँढती जब स्वामी के नयन में मृदु मिलन की प्यास
मुख पर उसके भी, विदा लेता जब मैं माथा टेक
सहसा दिखाई देती वेदना की रेखा एक

आती बीच-बीच में जो भू की साँस दुखभरी
छूकर उसे नंदन की झड़ती कुसुममंजरी

थाको स्वर्ग हास्यमुख ; करो सुधापान
देवगण, स्वर्ग तोमादेरई शूखस्थान --
मोरा परवासी, मर्तभूमि स्वर्ग नहे,
से ये मातृभूमि -- ताई तार चक्षे बहे
अश्रुजल धारा, यदि दू दिनेर परे
केह तारे छेड़े जाय दू दंडेर तरे,
यत क्षुद्र, यत क्षीण, यत अभाजन,
सबारे कोमल वक्षे बाँधीबारे चाय --
धूलिमाखा तनूस्पर्शे हृदय जूड़ाय
जननीर, स्वर्गे तव बहूक अमृत
मर्ते थाक् शूखेदू:खे अनंत मिश्रित
प्रेमधारा -- अश्रुजले चिरश्याम करि
भूतलेर स्वर्गखंडगुलि

हे अप्सरि !
तोमार नयनज्योति प्रेमवेदनाय
कभू ना होइक म्लान -- लईनू विदाय
तुमि कारे करो ना प्रार्थना ; कारो तरे
नाहि शोक, धरातले दीनतम घरे

हे देवो ! सँभालो अपना स्वर्गलोक तुम महान
हास्यमुख रहकर यहाँ सुख से करो सुधापान
मैं तो परदेसी हूँ, कभी यह न देश मेरा है.
कुछ काल को ही यहाँ बस हुआ बसेरा है

मर्त्यभूमि ही तो मेरी मातृभूमि प्यारी है
मुझसे दो दिनों का भी वियोग जिसे भारी है
आँसुओं की लगे झड़ी, पल में हृदय हो अधीर
विकल उसे कर दे यदि मेरे बिछुड़ने की पीर

क्षुद्र हो कि क्षीण हो, कुपात्र या कुवेश हो
पापी तापी सभी का शरणस्थल वही देश हो
धूल झाड़ तन की, गोद में ले, स्नेहअंचल तान
जननी वह पालती सभी को पुत्र के समान

स्वर्ग में अमृत हो, मृत्यु हो न सतत त्रासिनी
मृत्युलोक में है प्रेमगंगा शोकनाशिनी
सुखदुख में डूबते की बाँह लेती थाम जो
संवेदनजल से भू को रखती स्वर्गधाम जो

हे अप्सरि ! तुम्हारा मुख क्यों व्यथा से विवर्ण हो
तुमको क्या ! जो छूटे एक प्रेमी, दूसरा करो
तुम्हें क्या पता कि कैसी होती विरहवेदना
प्रेमी से बिछुड़ने की ! करती तुम न प्रार्थना
किसी के कुशल की कभी, आज ही फिर क्यों हो दुख
मेरे बिछुड़ने का तुम्हें ! तुम तो चिरप्रसन्नमुख

यदि जन्मे प्रेयसी आमार, नदीतीरे
कोनो एक ग्रामप्रान्ते प्रच्छन्न कुटीरे
अश्वत्थ छायाय, से बालिका बक्षे तार
राखिबे संचय करि सुधार भाण्डार
आमार लागिया सयतने. शिशुकाले
नदीकूले शिवमूर्ति गढ़िया सकाले
आमारे माँगिया लबे वर, संध्या होले
ज्वलंत प्रदीपखानि भासाइया जले
शंकित कम्पित वक्षे चाही एकमना
करिबे से आपनार सौभाग्यगणना

एकाकी दाँड़ाय घाटे, एकदा सूक्षणे
आसिबे आमार घरे सन्नतनयने
चंदनचर्चितभाले, रक्तपटाम्बरे
उत्सवेर बाँसरीसंगीते, तार परे
सूदिने दूर्दिने, कल्याणकंकण करे
सीमंतसीमाय मंगलसिंदूरबिंदू,
गृहलक्ष्मी दुःखे-शूखे, पूर्णिमार इंदू
संसारेर समुद्रशियरे,

देवगण,
माझे माझे एइ स्वर्ग होइबे स्मरण
दूरस्वप्नसम -- जबे कोनो अर्धराते
सहसा हेरिबो जागि निर्मल शय्याते

प्रिया ने, पर, मेरी, भूपर किसी नदीतट के
छोटे-से अजाने गाँव में पुनः पलटके
किसी दीन घर में भी जन्म जो लिया हो कहीं
वह एक पल को भी मुझे भूली होगी नहीं
बाल्यावस्था से ही होगी पूजाअर्चना में लीन
फिर से पाने को मुझे, संचित किये अंतहीन
प्रेमसुधाराशि उर में, पाकर भी देह नयी
होगी स्मृति सँजोये पूर्वजन्म के सुहाग की
प्रातःकाल जाकर वह अकेली नदीतीर पर
गढ़कर शिवमूर्ति, बनाने को मुझे अपना वर
प्रार्थना करेगी उससे, संध्या-समय दीप जला
घाट पर पहुँच उसे चपल लहरियों पर बहा
कम्पितवक्ष गणना करेगी उस काल की
द्वार पर जब उसके लिए सजी होगी पालकी
चंदनचर्चितभाल, अरुण पाटाम्बर सजी
सलजमुख, बजती शहनाइयों में द्वार की
और एक दिन शुभ घड़ी में फिर धरेगी पाँव
नव वधू बन वह, मेरे घर में, छोड़ अपना गाँव
सुदिन-कुदिन में, चमकती हुई भाल पर
जगजलनिधि के, पूर्णेंदु की प्रभा लेकर
माँग में सिंदूर, मंगलकंकण से सजे हाथ
फिर वह गृहलक्ष्मी बन रहेगी सदा मेरे साथ
बीच-बीच में स्मृति मुझे स्वर्ग की भी आयेगी
दूरस्थ स्वप्न-सी, जब मेरी नींद टूट जायेगी

पड़ेछे चंद्रेर आलो, निद्रिता प्रेयसी,
लुंठित शिथिल बाहू, पड़िआछे खसि
ग्रंथि शरमेर ; मृदू सौहागचुंबने
सचकिते जागि उठि गाढ़ आलिंगने
लताइबे वक्षे मोर ; दक्षिण अनिल
आनिबे फूलेर गंध, जाग्रत कोकिल
गाहिबे सूदूर शाखे

अयि दीनहीना !
अश्रुआँखि दु:खातुरा जननी मलिना,
काँदिया उठेछे मोर चित्त तोर तरे
अयि मर्तभूमि, आजि बहूदिन परे
येमोनी विदाय दु:खे शुष्क दुई चोखे
अश्रुते पूरिलो, एमोनि ए स्वर्गलोके
अलस कल्पनाप्राय कोथाय मिलालो
छायाच्छवि, तव नीलाकाश, तव आलो
तव जनपूर्ण लोकालय, सिन्धुतीरे
सूदीर्घ बालुकातट, नील गिरिशिरे
शुभ्र हिमरेखा, तरूश्रेणीर माझारे
नि:शब्द अरुणोदय, शून्य नदीपारे
अवनतमूखी संध्या. -- बिंदू-अश्रुजले
यत प्रतिबिंब येनो दर्पणेर तले
पड़ेछे आसिया

कभी आधी रात में, दिखेगा चाँद का आलोक
निद्रित प्रिया के पास आते बिना रोकटोक

शिथिल पड़ी बाँहें, खुली होगी ग्रंथि लज्जा की
चकित चुम्बन से सहसा जगी, दृष्टि कर बाँकी
गाढ़ आलिंगन से, सिमटकर वक्ष में मेरे
जब वह रहेगी मुझे बाहुलता से घेरे
दक्षिणवायु बहा फूलों की सुरभि लायेगी
जग कर दूर तरु की डालों में कोयल गायेगी

ओ दीनाहीना मर्त्यभूमि ! बहुत दिन के बाद
रो पड़ा है मन मेरा आज तुझे करके याद
देख न पाए थे ज्यों नयन तुझे अश्रुभरे
विदा के समय, त्यों ही स्वर्ग अब दृगों से परे
लुप्त हुए कल्पित स्वप्न का-सा रूप धरता है
मन अब उसका विचार भी न करता है
तेरा नीलाकाश, मृदुप्रकाश, जननिवास तेरा
सैकत सिंधुतीर, गिरिशिखर हिमघनों से घेरा
तरुओं के बीच से उभरता शांत अरुणोदय
नतमुखी संध्या नदी पार होती तम में लय
संचित कुल बिम्ब मानों एक अश्रुकण के
उतर आये हैं तल में मन के दर्पण के

हे जननी पुत्रहारा,
शेष विच्छेदेर दिने जे शोकाश्रुधारा
चक्षु होते झरि पड़ि तव मातृस्तने
करेछिलो अभीसिक्त, आजि एतोक्षण
से अश्रु शुकाये गेछे. तबू जानि मने,
यखनी फिरिबो पून तव निकेतने
तखनी दूखानि बाहू धरिबे आमाय
बाजिबे मंगलशंख ; स्नेहेर छायाय
दू:खे-शूखे-भये-भरा प्रेमेर संसारे
तव गेहे, तव पुत्रकन्यार माझारे
आमारे लईबे चिरपरिचितसम --
तार परदिन होते शियरेते मम
सारा क्षण जागि रबे कंपमान प्राणे
शंकित अंतरे ऊर्ध्वे देवतार पाने
मेलिया करूण दृष्टि, चिंतित सदाई
'याहारे पेयेछि तारे कखनो हाराई'

पुत्र से वियुक्ता हे जननि ! तेरा जिस दिन
पुत्र से हुआ था विच्छेद, जो मुख से मलिन
अश्रुधारा कर रही थी उरोजों का अभिषेक
शुष्क भी हो आज, है भरोसा, दूँगा माथा टेक
लौटकर जब तेरे चरणों पर, भूमि से उठा
बाँहों में भर लेगी मुझे प्रेम दे तू पहले-सा

मंगल शंखनाद में फिरूँगा पुनः अपने घर
स्नेहछायामयी सुखदुख से भरी पृथ्वी पर
जननी ! असंख्य अपने पुत्रपुत्रियों के बीच
लेगी तू मुझे भी तब निज मोदमंडली में खींच

उसके बाद तो फिर रखकर सिर पर निज कोमल कर
जागती रहेगी सदा चिंता-आशंका से भर
कम्पितप्राण, ममताकुल फिर-फिर नभ की ओर देख
विनय करेगी देवताओं से यही बस एक

बहुत दिनों बाद खोया पुत्र मिला मुझे, नाथ !
पाया जिसे उससे फिर न छूटे कभी मेरा साथ

दिनशेषे

दिनशेषे होये एलो, आँधारिलो धरनी
आर बेये काज नाई तरनी।
'हाँगो ए कादेर देशे
विदेशी नामिनु एसे'
ताहारे शुधानू हेसे येमनी --
अमनी कथा ना बोली
भरा घटे छलछलि
नतमूखे गेलो चलि तरुनी।
ए घाटे बाँधिबो मोर तरनी।

नामिछे नीरव छाया घनवनशयने,
ए देश लेगेछे भालो नयने।
स्थिर जले नाही साड़ा,
पातागुलि गतिहारा
पाखि यत घूमे सारा कानने --
शुधू ए सोनार साँझे
विजने पथेर माझे
कलस काँदिया बाजे काँकने।
ए देश लेगेछे भालो नयने।

दिन का शेष

दिन डूबा, डँक रहा अँधेरा गाँव को
बाँधूँगा मैं इसी घाट पर नाव को

पूछे भी मत, "नाविक ! तुम इस देश में
आये थकित कहाँ से दिन के शेष में ?"
जल छलकाती भरा कलश सिर पर धरे
विहँस चले नतमुख तरुणी, रुख मत करे
जगा रही नूपुर-ध्वनि तो रस-भाव को
बाँधूँगा मैं इसी घाट पर नाव को

उतरी खेतों में संध्या तन्द्रालसा
दूर राजप्रासाद बहुत लगता भला
सोये तृण-तरु, नदी-सलिल भी सो रहा
फिर भी तट पर जो कंकण-स्वर हो रहा
साँकल से ज्यों बाँध रहा है पाँव को
बाँधूँगा मैं इसी घाट पर नाव को

झलिछे मेघेर आलो कनकेर त्रिशूले
देऊटि ज्वलिछे दूरे देउले।
श्वेत पाथरेते गड़ा,
पथखानी छाया-करा
छेये गेछे झरेपड़ा बकूले।
सारि सारि निकेतन
बेड़ा-देउया उपवन,
देखे पथिकेर मन आकुले।
देऊटि ज्वलिछे दूरे देउले।.
राजार प्रासाद होते अति दूर बातासे
भासिछे पूरवीगीति आकाशे।
धरनी समूख पाने,
चले गेछे कोन खाने,
परान केनो के जाने उदासे।
भालो नाही लागे आर
आसा-याउया बार-बार
बहूदूर दूराशार प्रवासे।
पूरबी रागिनी बाजे आकाशे।

कानने प्रासादचूड़े नेमे आसे रजनी,
आर बेये काज नाही तरनी।
यदि कोथा खूँजे पाई,
माथा राखिबार ठाँई
बेचाकेना फेले याई एखनि --
येखाने पथेर बाँके,
गेलो चलि नत आँखे
भरा घट लये काँखे तरुनी।
एई घाटे बाँधिबो मोर तरनी।

दिखता मंदिर-शिखर, शंख-ध्वनि आ रही
वायु गेह-स्मृति ला मन विकल बना रही
यह अलकों की गन्ध, चूड़ियों की खनक
ले जायेगी मुझे खींचकर गाँव तक
पा ही लूँगा दो गज धरती ठाँव को
बाँधूँगा मैं इसी घाट पर नाव को

आवर्तन

धूप आपनारे मिलाईते चाहे गंधे,
गंध से चाहे धूपेर रहिते जूड़े।
सूर आपनारे धरा दिते चाहे छंदे
छंद फिरिया छूटे जेते चाहे सूरे

भाव पेते चाय रूपेर माझारे अंग,
रूप पेते चाय भावेर माझारे छाड़ा।
असीम से चाहे सीमार निविड़ संग,
सीमा चाय होते असीमेर माझे हारा

प्रलये सृजने ना जानि ए कार युक्ति,
भाव होते रूपे अविराम जाउया-आसा --
बंध फिरिते खूँजिया आपन मूक्ति,
मूक्ति माँगिछे बाँधनेर माझे बासा

धूप चाहती मिलूँ गंध से

धूप चाहती मिलूँ गंध से, गंध चाहती धूप
सुर छंदों की, छंद सुरों की, चाहें विभा अनूप

भाव रूप पाने को इच्छुक जो मोहे संसार
और रूप की चाह -- भाव बन खोलूँ मन के द्वार

है असीम सीमा को आकुल, सीमा की है चाह
बनूँ असीम, अनंत, अगोचर, अटल, अकूल, अथाह

किसकी थी वह युक्ति रच दिया जिसने विश्व विराट्
प्रलय सृजन की, सृजन प्रलय की जोहा करते बाट

बंध ढूँढता सदा मुक्ति पाने का मिले उपाय
और मुक्ति की चाह प्रेम के बंधन में बँध जाय

असमाप्त

जीवने जत पूजा होलो ना सारा,
जानि हे, जानि ताऊ होय नि हारा।

ये फूल ना फूटिते झरे छे धरनी ते
ये नदी मरूपथे हारालो धारा,
जानि हे, जानि ताऊ होय नि हारा ।।

जीवने आज उ याहा रयेछे पिछे,
जानि हे, जानि ताऊ होय नि मिछे

आमार अनागत, आमार अनाहत
तोमार बीना तारे बाजिछे तारा
जानि हे, जानि ताऊ होय नि हारा ।।

वह है नहीं अधूरी

पट हुए बंद , पूजा हुई नहीं पूरी
जानता हूँ, जानता हूँ, वह है नहीं अधूरी

फूल जो धरती पर गिरा रहकर अनखिला
नदी जिसे सागर का कूल नहीं मिला

यात्रा जो लक्ष की मिटा न सकी दूरी
जानता हूँ , जानता हूँ, वह है नहीं अधूरी

पिछड़े जो, विफल नहीं उनका भी जीवन
क्या न मैं भी पिछड़, प्रभु-कृपा से गया कवि बन

महकेगी मेरी भी कृति ज्यों कस्तूरी
जानता हूँ, जानता हूँ, वह है नहीं अधूरी

याबार दिन

याबार दिने एई कथाटि बोले जेनो जाई-
या देखेछि, या पेयेछि, तूलना तार नाई।

एई ज्योति समूद्र माझे
ये शतदल पद्म राजे
तारि मधू पान करेछि, धन्य आमि ताई
याबार दिने एई कथाटि जानिये जेनो जाई ॥

विश्वरुपेर खेलाघरे कतई गेलेम खेले,
अपरूपके देखे गेलेम दूटी नयन मेले।
परश यारि जाए ना करा
सकल देहे दिलेन धरा,

एईखाने शेष करेन यदि शेष करे दिन ताई-
याबार बेला एई कथाटि जानिये जेनो जाई

जाने के दिन

जाने के दिन, विदा लूँगा मैं जग से यही कहकर
तुलना नहीं उसकी जो देखा और पाया मैंने दो दिन इस बाग में ठहर

शत-शत रूपों में झिलमिला
कमल जो इस ज्योति-महासिंधु में खिला
धन्य हुआ हूँ मैं नित पीता हुआ, उसकी पँखुरियों से मधु जी भर

विश्व खेलाघर में बहुत खेला
देखा है अरूप को भी दृग की पुतलियों में ला
जो था अगम, अनदिखा, अजाना
उसको भी शब्दों में बखाना
हूँ मैं आप्तकाम, आत्मतुष्ट आज, शेष भी हो मेरी जीवनयात्रा यहीं पर

जाने के दिन विदा लूँगा मैं जग से यही कहकर
तुलना नहीं उसकी जो देखा और पाया मैंने दो दिन इस बाग में ठहर

कर्तव्यग्रहण

के लइबे मोर कार्य, कहे संध्यारवि --
शुनिया जगत् रहे निरुत्तर छवि ।
माटिर प्रदीप छिलो ; से कहिलो, 'स्वामी,
आमार येटूकू साध्य करिबो ता आमि ।'

* * * * * *

भक्तिभाजन

रथयात्रा, लोकारण्य, महा धूमधाम --
भक्तेरा लूटाये पथे करिछे प्रणाम
पथ भावे, 'आमि देव', रथ भावे, 'आमि'
मूर्ति भावे , 'आमि देव' -- हासे अन्तर्यामी

* * * * * *

निजेर उ साधारणेर

चन्द्र कहे, 'विश्वे आलो दियेछि छडाये
कलंक या आछे ताहा आछे मोर गाये'

कर्तव्यग्रहण

सांध्य-रवि बोले, 'मेरा स्थान लेगा कौन ?'
सुनकर यह जग में सभी नतशिर रहे मौन
मिट्टी का लघु दीप बोला, 'मैं लूँगा, श्रीमान !
यथाशक्ति तम से लड़ूँगा, निराश हों न'

* * * * * *

भक्तिभाजन

रथयात्रा में जुड़ी बड़ी भीड़ भक्तजन की
पथ में लोटते थे लोग सुध नहीं थी तन की
ध्वजा कहे, 'देव मैं हूँ, रहूँ सब से ऊँचे पर'
रथ कहे, 'देव मैं हूँ, सम्मुख सब रहे पसर'
मूर्ति कहे, 'देव मैं हूँ, पूजते हैं सब मुझे'
हँसते अंतर्यामी मन-ही-मन, सुन-सुनकर

* * * * * *

अपना और संसार का

चाँद बोला, 'बाँट दिया विश्व में प्रकाश
कालिमा कलंक की टिका ली अपने पास'

कुटुंबिता

केरोसिन-शिखा बोले, 'माटिर प्रदीप,
भाई बोले डाको यदि देबो गला टीप ।'
हेनकाले गगनेते उठिलेन चाँदा
केरोसिन बोलि उठे, एशो मोर दादा

* * * * * *

असंभव – भालो

यथासाध्य भालो बोले, 'उगो आसे भालो,
कोन स्वर्गपूरी तूमि करे थाको आलो ?'
आसे-भालो केंदे कहे, 'आमि थाकि हाय
अकर्मण्य दाम्भिकेर अक्षम ईर्षाय'

कुटुंबिता

लालटेन बोली, 'सुन रे, मिट्टी के प्रदीप !
बहन यदि कहा मुझे, दूँगी गला टीप'
इसी क्षण चाँद उगा ज्योति-शर लिये
देख उसे बोली, 'दादाजी ! पधारिए

* * * * * *

असंभव – अच्छा

यथासाध्य अच्छा बोला, '**और अच्छा**, भाई !
रहकर किस नंदन में ज्योति जगमगायी ?'
और अच्छा रोकर बोला, 'हाय, क्या कहूँ !
अकर्मन्य, दम्भी की अक्षम ईर्ष्या में रहूँ'

शाहजहाँ

ए कथा जानिते तुमि भारत-ईश्वर शाहजहान,
काल श्रोते भेसे जाय जीवन यौवन धनमान।
शुधू तव अन्तरवेदना
चिरन्तन होए थाक, सम्राटेर छिलो ए साधना।
राजशक्ति वज्रसूकठिन
संध्या रक्तरागसम तंद्रातले होय होक लीन
केवल एकटी दीर्घश्वास
नित्य-उच्छ्वसित होय सकरूण करूक आकाश,
एई तव मने छिलो आश।
हीरामुक्तामाणिक्येर घटा
येन शून्य दिगंतेर इंद्रजाल इंद्रधनूछटा
याय यदि लुप्त होय याक,
शुधू थाक
ऐक विंदू नयनेर जल
कालेर कपोलतले शूभ्र समूज्वल
ए ताजमहल ।।

हाय उरे मानवहृदय,
बार बार
कारों पाने फिरे चाहिबार
नाई ये समय,
नाई नाई।

शाहजहाँ

जानते थे तुम भलीभाँति यह शाहजहाँ
प्रेमी-हृदय हे भारत-सम्राट् !
काल-स्रोत में ठहर न पाते यहाँ
धन-मान, जीवन-यौवन के ठाट-बाट
तो भी अपने प्रेमाकुल हृदय की व्यथा
रखने को चिरंतन तुमने किया बहुत तप था
राज्य-शक्ति वज्र-सी कठिन
शून्य में विलीन हो भले ही सांध्य मेघों-सी चमककर चार दिन
फिर भी था तुम्हारा यह प्रयास
केवल एक तुम्हारा निःश्वास
सदा उच्छ्वसित हो बनाता रहे शोकमय समग्र दिशाकाश |
मन में थी सँजोई यही आश
हीरे-मोती-माणिकों की घटा
चमकाकर नभ में क्षणिक इन्द्रधनु-छटा
हो भी यदि लुप्त तो हो जाय, दुख नहीं
रहे बस वहीं का वहीं होकर अचल
काल के कपोल पर गया जो ढल
एक विन्दु अश्रुजल
शुभ्र, समुज्ज्वल
यह ताजमहल

हाय रे मानव-हृदय !
देखना जो चाहे कोई फिर-फिरकर बारबार
इसका नहीं है समय
नहीं कभी, नहीं कभी

जीवनेर खर श्रोते भासिछे सदाई
भूवनेर घाटे घाटे ----
एक हाटे लउ बोझा, शून्य करे दाऊ अन्य हाटे।
दक्षिणेर मन्त्रगुन्जरणे
तव कुंजवने
वसंतेर माधवीमंजरी
येई क्षणे देय भरि
मालान्चेर चंचल अंचल
विदाय गोधूली आसे धूलाय छड़ाय छिन्न दल।
समय ये नाई
आबार शिशिररात्रे ताई
निकुंजे फूटाये तोल नव कून्दराजि
साजाइते हेमंतेर अश्रुभरा आनंदेर साजि
हाय रे हृदय
तोमार संचय
दिनान्ते निशान्ते शुधू पथप्रान्ते फेले येते होय।
नाई नाई, नाई ये समय ।।

हे सम्राट्, ताई तव शंकित हृदय
चेयेछिलो करिबारे समयेर हृदयहरन
सौन्दर्ये भूलाये
कंठे तार कि माला दूलाये
करिले बरण
रूपहीन मरणेर मृत्युहीन अपरूप साजे !
रहे ना ये
विलापेर अवकाश
बारो मास,

धारा में जीवन की डूबते जा रहे सभी
जग में घाट-घाट पर
बस एक हाट से उठाकर बोझ
ले जाकर पटकते उसे अन्य किसी हाट पर
दक्षिणी पवन के संचरण में
वासंती कुंजवन में
खोल निज दल को
करती हुई सुरभित लताओं के अंचल को
फूली जो माधवी मंजरी
नष्ट उसे करती शीघ्र ग्रीष्मपवन धूल से भरी
इतना भी नहीं है समय
करने वसंत का शृंगार
रोक सके हँसते हुए फूलों का विलय
फिर से निकुंज में खिला दे श्वेत कुंद कुसुम
फिर से नयी छवि से सजा दे वन के लता-द्रुम
हाय रे मानव-हृदय !
दिन भर जो कुछ भी तुमने रक्खा हो समेट
रात के आते ही होता पल में तम की भेंट
नहीं है, नहीं है, नहीं है समय |
रख ले बचा के यहाँ करे जो संचय

इसीलिए हे सम्राट ! तुम्हारा शोकाकुल मन
काल का करने अतिक्रमण
बंद हो गया है सौंदर्य के इस मणिगृह में
देकर अरूप को भी रूप का मोहक आवरण |
इसीलिये, हे सम्राट !
मोहित करने काल को पिन्हाया तुमने सुमन-हार
मरण के मृण्मय शरण-गृह को अमरता से दिया सँवार
देने दुखी मन को अवकाश सतत क्रंदन से

ताई तव अशांत क्रन्दने
चिर-मौन जाल दिये बेंधे दिलो कठिन बंधने !
ज्योत्स्नाराते निभृत मंदिरे
प्रेयसीर
ये नामे डाकिते धीरे धीरे
सेई काने-काने डाका रेखे गेले एई खाने
अनंतेर काने
प्रेमेर करूण कोमलता
फूटिलो ता
सौन्दर्येर पूष्पपूंज प्रशांत पाषाने ।।

हे सम्राट् कवि,
एई तव हृदयेर छवि
एई नव नव मेघदूत
अपूर्व अद्भूत
छंदेगाने
उठियाछे अलक्षेर पाने
येथा तव विरहिनी प्रिया
रयेछे मिशिया
प्रभातेर अरूण-आभासे
क्लांतसंध्या दिगंतरे करूण निश्वासे
पूर्णिमाय देहहीन चामेलीर लावण्यविलासे
भासार अतीत तीरे
कांगालनयन येथा द्वार होते आसे फिरे फिरे ।
तोमार सौंदर्यदूत यूग यूग धरि
एड़ाइया कालेर प्रहरि
चलियाछे वाक्यहारा एई वार्ता निया ---
'भूलि नाई, भूलि नाई, भूलि नाई, प्रिया !'

बाँध दिया तुमने वह विरहाकुल मन अपना
प्रस्तरों के कठोर मौन इस बंधन से
ज्योत्स्ना-निशीथ में एकांत यमुना के तीर
होकर अधीर
जब-जब तुम पुकारते थे बिछुड़ी हुई प्रेयसी को
देख कर इसे ही हाहस बँधता होगा जी को
पीड़ाकुल पुकारते थे नाम जो तुम महाराज !
पुष्पपुंज-सा सुकोमल, सरस कर गया है आज
पाषाण-खण्डों को भी, जड़कर जिसे अंतर में
प्रिया को तुम्हारी जो बसी जा दूर अम्बर में
व्यथा वे तुम्हारी हैं सुनाते मौन स्वर में |

हे सम्राट्-कवि !
यह तुम्हारे अंतर की है छवि
अपूर्व, अद्भुत मेघदूत यहीं है तुम्हारा
चेतन बना प्रस्तरों के द्वारा
लिखा है यह काव्य तुमने
फूँककर विरही हृदय की विकल बाँसुरी को
प्रेम का सन्देश देने
बिछुड़ी हुई अपनी प्राणेश्वरी को
खो गयी है जो अरुणोदय के आभास में
सांध्य दिशाओं की करुण नीरव नि:श्वास में
पूर्णिमा में चमेली के लावण्य-विलास में
और तुम्हारी वह विरहिणी प्रिया !
ओझल जिसने निज को श्वेत पट में कर लिया
नयन युगल बंद किये
बेसुध बन तुम्हारे लिये
सुनती सन्देश जो इस मौन दूत ने दिये
'भूला नहीं, भूला नहीं, भूला नहीं तुम्हें, प्रिये

चले गेछे तूमि आज
महाराज
राज्य तव स्वप्नसम गेछे छूटे
सिंहासन गेछे टूटे
तव सैन्यदल
यादेर चरणभरे धरणी करितो टलमल
ताहादेर स्मृति आज वायूभरे
उड़े जाय दिल्लिर पथेर धूलि-'परे।
वन्दीरा गाये ना गान
यमूना कल्लोल-साथे नह्बत मिलाये ना तान।
तव पूरसून्दरीर नूपूरनिक्कन
भग्न प्रासादेर कोने
भरे गेछे झिल्लिस्वने
कान्दाय रे निशार गगन।
तबू उ तोमार दूत अमलिन
श्रान्ति-क्लान्ति-विहीन,
करि राज्य-भांगागड़ा,
तूच्छ करि जीवनमृत्यूर ऊठापड़ा,
यूग-यूगान्तरे कहितेछे
एक स्वरे
चिरविरहीर वाणी निया --
'भूलि नाई, भूलि नाई, भूलि नाई, प्रिया!

जा चुके हो तुम, महाराज !
आज
स्वप्न-सी विलुप्त राज्यसत्ता है तुम्हारी अब
बंद हो चुके हैं राज-काज सब
सिंहासन भग्न हुआ
राजदंड पड़ा है अनछुआ
जिसके पदाघात से धरित्री टलमल होती थी कभी
आज उस सेना का नहीं है कहीं चिह्न भी
स्मृति आज उसकी उड़ती है धूल बनकर
दिल्ली की हवा में राजपथ पर
गाते नहीं वन्दीगण गान
नौबत नहीं गूँजती है यमुना के किनारों पर
लहरों से मिलाते हुए तान
अब तुम्हारी नर्तकियों के नूपुर की झंकार
आती नहीं है भग्न महल के झरोखों से
झिल्ली-रव बन नभ में करती हाहाकार
तब भी स्वर तुम्हारे दूत का हुआ न क्षीण
चिर-अमलिन, श्रान्तिहीन, क्लान्तिहीन
तुच्छ करता राजमुकुट-मणियों की चमक-दमक
तुच्छ करता जीवन और मृत्यु की उठापटक
कहता आ रहा यह सन्देश युग-युगान्तर से
चिर-विरही मन का तुम्हारा, मौन स्वर से
'रचा मैंने प्रेम का प्रतीक यह तुम्हारे लिये
भूला नहीं, भूला नहीं, भूला नहीं तुम्हें, प्रिये!'

मिथ्या कथा ! के बोले ये भूले नाई ?
के बोले रे खोलो नाई
स्मृतिर पिंजरद्वार ?
अतीतेर चिर-अस्त-अन्धकार
आजि उ हृदय तव रेखेछे बाँधिया
विस्मृतिर मुक्ति पथ दिया
आजि उ से होय नि बाहिर ?
समाधि मंदिर एक ठाँई रहे चिरस्थिर,
धरार धूलाय थाकि
मरणेर आवरणे मरणेर यत्ने राखे ढाकि।
जीवनेरे के राखिते पारे !
आकाशेर प्रति तारा डाकिछे ताहारे।
तार निमंत्रण लोके लोके
नव-नव पूर्वान्चले आलोके आलोके
स्मर्णेर ग्रंथि टूटे
से ये जाय छूटे
विश्वपथे बंधनविहीन।
महाराज, कोनो महाराज्य कोनोदिन
पारे नाई तोमारे धरिते
समूद्रस्तनित पृथ्वी, हे विराट्, तोमारे भरिते
नाहि पारे –
ताई ए धरारे
जीवन-उत्सव-शेषे दूई पाये ठेले
मृतपात्रेर मतों जाऊ फेले

मिथ्या है, कौन कहता है कि भूले नहीं
अब भी तुम टिके हो वहीं
कौन कहता है खोल स्मृतियों का पिंजर-द्वार
चीरकर अतीत स्मृतियों का अंध अन्धकार
बाहर तुम आये नहीं विस्मृति के द्वार से
आज तक भी उस अँधेरे कारागार से
वह समाधि-मंदिर तो अचल है अब भी भू पर
मृत्यु को सयत्न स्मृति के आवरण से ढँककर
गतिमय जीवन को पर कौन रोक पाया है
नभ का कोई तारा भी न जिसके हित पराया है
भेजकर पूर्व से आलोक नित्य जिसके लिये
व्योम ने है शून्य में सहस्रों द्वार खोल दिये
बाँधकर रखती कैसे, हो भी चिर-मनोहरा
सागर-परिवेष्टित उसे यह छोटी-सी धरा
इसीलिए तो, दोनों पाँवों से, हे सम्राट्!
ठेल दिया था तुमने वैभव धरा का विराट्
चिर-उन्मुक्त, बैठकर प्रकाश-रथ में
किया प्रस्थान था अनंत व्योम-पथ में

तोमार कीर्तिर चेये तूमि ये महत्,
ताई तव जीवनेर रथ
पश्चाते फेलिया जाय कीर्तिर तोमार
बारम्बार
ताई
चिह्न तव पड़े आछे, तूमि हेथा नाई।
ये प्रेम पथेर मध्ये पेते छिलो निज सिंहासन
चलिते चालाते नाहि जाने
तार विलासेर संभाषण
पथेर धूलार मतो जड़ाये धरेछे तव पाये --
दियेछो ता धूलिरे फिराये
सेई तव पश्चातेर पदधूलि-'परे
तव चित्त होते वायूभरे
कखनो सहसा
उड़े पड़ेछिलो बीज जीवनेर माला हते खसा
तूमि चले गेछे दूरे,
सेई बीज अमर अंकूरे
उठेछे अम्बर पाने,
कहिछे गंभीर गाने
यत दूर चाई
नाई नाई से पथिक नाई।
प्रिया तारे राखीलो ना, राज्य तारे छेड़े दिलो पथ,
रूधिलो ना समूद्र पर्वत।
आजि तार रथ

अपनी कीर्ति से भी बड़े हो तुम, वह कभी
छू नहीं पाती है तुम्हारी क्षीण छाँह भी
गति से तुम्हारी बारबार
मान-मान जाती हार
रथ को तुम्हारे वह पकड़ नहीं पाती है
काल के पथ पर सदा पीछे छूट जाती है
प्रेम का प्रतीक तो खड़ा है भूमि पर वह आज
पर तुम नहीं हो वहाँ, महाराज !
जिस प्रेम में नहीं हो गति कभी तिल भर
पाकर सिंहासन पड़ा हो एक स्थल पर
कैसे बाँध पाता वह तुम्हारे मुक्त मन को
मुक्त हो गए तुम उसे सौंपकर भुवन को
जीवन में जिसके हाथ कभी हाथ में थामे
लिपटी रही जो पुष्पमाला सदृश ग्रीवा में
सौरभ उसी पुष्पमाला का यह ताजमहल
पूँजीभूत यश प्रेम के प्रकाश का धवल
शोभित कर रहा है अपनी द्युति से धरा का अंचल
उन्नत-शिर खड़ा है फैलाकर बाँहें
पर वे कितना भी चाहें
पकड़ न पातीं उसे जिसने प्रिया-स्मरण-हेतु
रचा था यह प्रणय-सेतु
रोक न पाया जिसे प्रेम का भी यह उपहार
मुक्त हुआ आप करके अपनी प्रिया का श्रृंगार
प्रेयसी ही नहीं, छूटा जिससे साम्राज्य भी
सागर हो कि पर्वत
रोक नहीं पाये कोई जिसका पथ

चलिया छे रात्रिर आह्वाने
नक्षत्रेर गाने
प्रभातेर सिंहद्वार-पाने।
ताई
स्मृति भारे आमि पड़े आछि,
भारमुक्त से एखाने नाई'

रजनी का पाकर आमंत्रण
दूर-दूर नक्षत्रों की ओर
लाँघ धरती का छोर
तारों के संगीत से बेसुध बन
कर गया जो नभ के ज्योति-द्वार में प्रवेश
छोड़कर अपना देश
सौंप कर प्रेम की निशानी यह भुवन को
मुक्त कर गया वह इस बन्धन से भी मन को
और यह प्रतीक उसके प्रेमाकुल हृदय का
मृत्यु पर प्रेम की विजय का
भूमि पर खड़ा है अमर प्रेम की कहानी ले
जग में सौंदर्य की अमिट निशानी ले
कहता हुआ, 'रहूँगा मैं चिर-दिन
काल की प्रचंडता में अमलिन
विरही हृदय की व्यथा का भार ढोता
मुक्त हुआ प्रेमी पर मैं मुक्त कैसे होता !

आत्मा की अमरता

राहुर मतन मृत्यू
शूधू फेले छाया
पारे ना करिते ग्रास जीवनेर स्वर्गीय अमृत
जड़ेर कवले
ए कथा निश्चित मने जानि।

प्रेमेर असीम मूल्य
सम्पूर्ण वंचना करि लवे
हेन दस्यु नाई गुप्त
निखिलेर गुहा-गह्वरेते
ए कथा निश्चित मने जानि।

सब चेये सत्य करे पेयेछिनू यारे
सब चेये मिथ्या छिलो तारि माझे छद्मवेश धरि,
अस्तित्वेर ए कलंक कभू
सहितो ना विश्वेर विधान
ए कथा निश्चित मने जानि।

आत्मा की अमरता

कितना भी प्रयत्न करे हँककर इसे मृत्यु अपनी
राहु के समान घनघोर काली छाया से
छीन न सकेगी कभी जीवन का अमृत दिव्य
वह असहाय, जड़, जीर्ण-शीर्ण काया से
यह बात सुनिश्चित मन में जानता हूँ

सामर्थ्य नहीं है किसी में भी जो प्रेम के
चिर-अमूल्य इस अमृत-कण को नष्ट कर सके
छले या चुरा ले इसे, दस्यु नहीं ऐसा कोई
अम्बर में, भूमि पर, विवर में सिन्धुतल के
यह बात सुनिश्चित मन में जानता हूँ

पाया जिसे सब से अधिक सत्य समझ जीवन का
क्षद्म वेश में असत्य सब से अधिक था वहीं
लगे अस्तित्व के कृतित्व पर कलंक ऐसा
सृष्टि-रचना में सह्य यह विडंबना नहीं
यह बात सुनिश्चित मन में जानता हूँ

सबकिछु चलियाछे निरंतर परिवर्तवेगे
सेई तो कालेर धर्म।
मृत्यु देखा देय एसे एकान्तेई अपरिवर्तने,
ए विश्वे ताई से सत्य नहे
ए कथा निश्चित मने जानि।

विश्वेरे ये जेनेछिलो आछे ब'ले
सेई तार आमि
अस्तित्वेर साक्षी सेई
परम आमिर सत्ये सत्य तार
ए कथा निश्चित मने जानि।

हो रहे हैं यहाँ परिवर्तित सभी क्षण-क्षण में
धर्म है, नियम है अटल यही काल का
संभव नहीं, मृत्यु ही अपरिवर्तित हो एक यहाँ
जीवन सदा को रहे ग्रास उसके गाल का
यह बात सुनिश्चित मन में जानता हूँ

साक्ष्य देकर ही जिसका विश्व को चिन्हाया जाये
'मैं' यह कभी विश्व-निर्माता से न न्यारा है
चरम अस्तित्व सत्य का भी इसी 'मैं' से जुड़ा
शाश्वत यह जड़ता के तिमिर से नहीं हारा है
यह बात सुनिश्चित मन में जानता हूँ

जन्मदिन

आमार ए जन्मदिन माझे आमि हारा,
आमि चाही बन्धूजन यारा
ताहादेर हातेर परसे
मर्त्येर अंतिम प्रीतिरसे
निए जाबो जीवनेर चरम प्रसाद
निए जाबो मानूषेर शेष आशीर्वाद
शून्य झूली आजिके आमार
दियेछि उजाड़ करि
याहा किछू आछिलो दिबार
प्रतिदान यदि किछू पायी
किछू स्नेह, किछू क्षमा
तबे ताहा संगे निये याई
पारेर खेयाय जाबो जबे
भाषाहीन शेषेर उत्सवे

जन्मदिन

आज मैं थकाहारा
जन्मदिन के आयोजन की इस सन्निधि द्वारा
चाहता हूँ पाना बंधुजनों के कर का मृदु परस
मर्त्यभू का अंतिम प्राप्तव्य प्रीति-रस
जीवन का चरम प्रसाद
मानवों का अंतिम आशीर्वाद
मेरी यात्रा पूरी हो ली
जा रहा हूँ मैं आज रिक्त कर अपनी झोली
जो कुछ भी देने योग्य लाया था अपने साथ
लुटा चुका हूँ उसे खुले हाथ
प्रतिदान में कुछ स्नेह, कुछ क्षमा यदि पाऊँ
पार जाने की नौका पर जब चढ़ूँ
शेष के मौन उत्सव में उसे साथ लिये जाऊँ।

जीवनसत्य

रूपनारानेर कूले
जेगे उठिलाम
जानिलाम ए जगत
स्वप्न नय ।
रक्तेर अक्षरे देखिलाम,
आपनार रूप,
चिनिलाम आपनारे
आघाते आघाते
वेदनाय वेदनाय ;
सत्य ये कठिन ,
कठिनेरे भालोवासिलाम,
से कखनो करे ना वंचना ।
आमृत्यूर दूःखेर तपस्या ए जीवन,
सत्येर दारुण मूल्य लाभ करिवारे,
मृत्यूर सकल देना शोध करे दिते ।

जीवनसत्य

रूपनारान के किनारे
मैंने लोचन उघाड़े
जाना कि यह संसार
नहीं है कोरा स्वप्न का विस्तार।
इसमें रक्त के अक्षरों में लिखा
अपना रूप भी दिखा,
पहिचाना स्वयं को चोट पर चोट खाके
नित नयी वेदना पा के।
सत्य जो कठिन है
उसी कठिन को मैंने किया है प्यार
छलता नहीं जो कभी
स्रष्टा से कराता आँखें चार।
आमरण दुःख की तपस्या है यह जीवन,
सत्य का दारुण मूल्य पाने के लिये
मृत्यु का चुकाना होता ऋण।

शान्ति-पारावार

समूखे शान्तिपारावार
भासाऊ तरनी हे कर्णधार।

तूमि होवे चिरसाथी,
लउ लउ हे क्रोड़ पाति
असीमेर पथे ज्वलिबे ज्योति ध्रुवतारकार
मुक्तिदाता, तोमार क्षमा तोमार दया
होवे चिरपाथेय चिरयात्रार

होवे एनो मर्त्येर बंधन क्षय
विराट् विश्व बाहू मेलि लय,
पाय अंतरे निर्भय परिचय
महाअजानार।

शान्ति-पारावार

सम्मुख है शान्ति-पारावार
डुबा दो तरणि ,हे कर्णधार!
तुम्ही तो हो, प्रभु ! मेरे चिर-सहचर
ले चलो मुझे अपनी बाँहों में भर
दीप्त करो क्षमा-दया-संबल देकर
असीम की यात्रा का अन्धकार

हो जिससे मर्त्य के बंधनों का क्षय
मिलूँ विराट विश्व से बन प्रेम की लय
अज्ञात की वह प्रतीति दो ,करुणामय !
निर्भय तम गहन करूँ पार !
सम्मुख है शान्ति-पारावार
डुबा दो तरणि, हे कर्णधार !

रवीन्द्रनाथ और मैं

रवीन्द्रनाथ से हिन्दी की आधुनिक काव्य-धारा को बड़ी प्रेरणा मिली है। छायावाद और रहस्यवाद की काव्य-चेतना के मूल में उनका प्रभाव असंदिग्ध है। मैं भी सन् १९४० से ही, जब मेरे कविजीवन का प्रारम्भिक काल था, रवीन्द्रनाथ के काव्य से प्रेरणा ग्रहण करता रहा हूँ, कभी प्रतिद्वंदी बनकर, कभी प्रतिनिधि बनकर और कभी भक्त बनकर। कॉलेज के प्रारम्भिक दिनों में जब मेरी अवस्था मात्र १५-१६ वर्ष की थी, मित्रों में मैं अपने आप को रवीन्द्रनाथ का अभिशप्त राजकुमार कहता था।

कभी-कभी मौज में बालसुलभ चपलता के कारण यह भी कह बैठता था, "भारत में तो इस समय दो ही कवि हैं; बंगला के रवीन्द्रनाथ और हिन्दी का मैं।" ऐसे ही भावों से प्रेरित होकर मैंने रवीन्द्रनाथ की रुग्णावस्था में 'माँझी से' कविता लिखी थी। यही नहीं, सन् १९३९-४१ में, जब मैं चाँदनी के गीत लिख रहा था, तो मैंने रवीन्द्रनाथ के गीतों को ही अपने आदर्श के रूप में ग्रहण किया था। बाद में जब सन् १९७० में मैंने हिन्दी ग़ज़लों का सूत्रपात् किया था तो वह नया प्रयोग करते समय मन ही मन यह निश्चय कर रखा था कि मेरी ग़ज़ल के प्रत्येक शेर में उतनी प्रेम-भावना का समावेश हो जाए जितना रवीन्द्रनाथ के एक गीत में मिलता है। इसी उच्च आदर्श और अहैतुकी कामना के कारण ही मैं अपने शेरों में प्रेमभावना की इतनी सफल अभिव्यक्ति करने में सफल हो सका।

अब मैं अपने काव्य में समय-समय पर रवीन्द्रनाथ के प्रति अभिव्यक्त अपने मनोभावों का विवरण दूँगा। यह केवल मेरा ही नहीं, समस्त हिन्दी जगत् का, रवीन्द्रनाथ की १५०वीं जन्मतिथि पर उनके प्रति किया गया स्मृति-अर्चन भी होगा।

रवीन्द्रनाथ के प्रति मेरी पहली कविता है, 'माँझी से'। मैंने रवीन्द्रनाथ की रुग्णावस्था में माँझी के रूपक द्वारा उन्हें संबोधित करके यह कविता लिखी थी। उस समय मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का इंटर द्वितीय वर्ष का छात्र था। संयोग से निरालाजी उन्हीं दिनों काशी आये थे।

मेरी कविता को सुनकर वे गंभीर हो गये और बोले, "खड़े हो जाइए।"

जब मैं खड़ा हो गया तो बोले, "रवीन्द्रनाथ की पुस्तकें एक के ऊपर एक रख दी जायँ तो आपके सर के ऊपर से निकल जायेंगी। आपने ऐसा कैसे लिख दिया!" मैं निरुत्तर मौन खड़ा रहा। इसके कुछ क्षणों के बाद निरालाजी मेरी पीठ थपथपाने के बाद 'आप' से 'तुम' पर आते हुए बोले, "लेकिन तुम्हारी कविता है बहुत सुन्दर!"

माँझी से
(रवीन्द्रनाथ के प्रति)

किसे पुकार रहा तू, माँझी! धूमिल संध्या-बेला में
सागर का है तीर, खड़ा हूँ संगीहीन अकेला मैं
डूब चुका रवि अरुण, थकी लहरें, उदास है सांध्य पवन
तारक मणियों से ज्योतित नीलम-परियों के राजभवन

मधुबन पीछे लहराता है शांत मरुस्थल के उर में
आगे तरल जलधि-प्रांगण रोता विषाद-पूरित सुर में
काला महादेश जादू का कहीं बसा होगा उस ओर
बैठा-बैठा जहाँ खींचता है कोई किरणों की डोर

माँझी! परिचित स्वामी तेरा युग-युग से वह जादूगर
जिसका कठिन नियन्त्रण झंझा में समुद्र की लहरों पर

. . .

यौवनमद में चूर मारता एकाकी डाँडें भरपूर
कितनी बार गया होगा तू लाखों कोस तीर से दूर!
जहाँ मार्ग के कंकड़ मोती, अलकापुर के पहुँच समीप
देखी होंगी नीलम-घाटी, मणि-प्रवाल-रत्नों के द्वीप

वरुण देश की राजकुमारी तुझ पर मोहित हुई कभी
वे अल्हड़ साहस-गाथाएँ आज स्वप्न की बात सभी
शिथिल बाँह, पग काँप रहे, कंठ-स्वर रुँधने को आया
झुकी कमर, जड़-काष्ठ उँगलियाँ, जीर्ण त्वचा, जर्जर काया

समझा, जीवन की संध्या में आज पुकार रहा किसको
कौन तरुण वह, सौंप चला जाएगा यह नौका जिसको
आ जा, माँझी ! छाया-सा चुपचाप उतर निर्जन तट पर
इन लहरों से मैं खेलूँगा, अब तेरी नौका लेकर

बाद में मैं अपने मित्र राधेश्याम गुप्ता के साथ रवीन्द्रनाथ के दर्शन करने कलकत्ता जानेवाला था परन्तु वह संभव नहीं हो सका । एकाएक रवीन्द्रनाथ की मृत्यु का समाचार सुनकर मैं व्यथित हो गया । उसी मनःस्थिति में हृदयोद्गार निम्नलिखित कविता में फूट पड़े.

रवीन्द्रनाथ के प्रति
(उनके मृत्युदिवस की संध्या में लिखित)

भीड़ देवता के अंतिम दर्शन में
भक्त भवन-प्रांगण में क्रंदन करते
मलयानिल रोता फिरता निर्जन में
किस सुषमा के नंदन-वन में
अप्सरियों की छम-छनन में
आज महाकवि ! तुम अपनी सोने की वीणा लेकर
हुए उत्तरित क्षण में
हँसती होंगी परियाँ
सुर, गन्धर्व-समाज, समुद किन्नरियाँ

आज इंद्र की भरी राजनगरी में
छूटती होंगी फूलों की फुलझड़ियाँ
आज तुम्हारी मधुमय स्वर-झंकार
स्वयं भारती मन्त्र-मुग्ध हो सुनती,
रहीं दिव-वधूगण आरती उतार
सरस्वती के वरद पुत्र तुम
चरणस्पर्श-सुख-रहित मैं कुसुम,
खड़ा रहा जो, द्विधा-द्वंद्व में, बंद हो गए द्वार

सन् ८० के आसपास की बात है । मैं रवीन्द्रनाथ की रचना 'गान्धारीर आवेदन' पढ़ते-पढ़ते अत्यंत भावमग्न हो गया । मैंने यह अनुभव किया कि सन् १९४१ में रवीन्द्रनाथ की रुग्णावस्था में उन्हें यह आश्वासन देकर कि मैं आपका स्थान ग्रहण कर लूँगा, मैंने बड़ी भूल की थी । मैं इस योग्य नहीं था । मेरी यही भावना निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त है –

हे कविता-रवि !
चाहे जितनी सुन्दर लगती थी तेरी छवि,
प्रभात के धुँधलके में मैं यही सोचता था
'कभी तुझसे भी आगे निकल जाऊँगा !'
किन्तु अपराह्न में
जब मेरा अंग-अंग थककर चूर है,
लगता है,
तू अब भी मुझसे पहले जितनी ही दूर है !

इस कविता के बाद भी रवीन्द्रनाथ से अपनी तुलना करना मैंने नहीं छोड़ा और उन्हीं दिनों पुनः अपना मनोभाव दुहराया ।

कवीन्द्र रवींद्र सारी आयु
कविता के मेघ बरसाते रहे

जीवन-तरणी के भसान के क्षण भी
उनके ओठों पर गीत मँडराते रहे
अंतिम साँस तक वे रसभरे गीत गाते रहे
तब मैं ही भला अहेरी को आते देखकर
चुप कैसे हो जाऊँगा !
ज्यों-ज्यों तीर चुभता जायगा
और जोर-जोर से गाऊँगा
मन की पीड़ा को शब्दों में सजाऊँगा !

सन् १९८४-८५ के बाद मैंने सूर, तुलसी और कबीर की परम्परा में हिन्दी में भक्ति के गीत लिखना प्रारम्भ किया। सिनेमा के गीत की तरह मेरे गीत क्षणगीत न हों, इसके लिए उनका सहृदय सुधी समाज द्वारा स्वीकृत किया जाना आवश्यक था। त्यागराज की कीर्तियाँ और रवीन्द्रनाथ के गीतों की तरह उनमें भाव-संपदा, सार्थक अनुभूति तथा भाषा की सरलता होने से ही यह संभव था। मेरी समझ में उपर्युक्त बातें उनमें थीं, प्रतीक्षा थी केवल सुधी गायकों की। अत: एक गीत में इसके लिए मैंने सुविज्ञ गायकों का आवाहन किया।

मेरे गीत तुम्हारा स्वर हो
क्या फिर मेरे शब्दों की भी धूम न नगर-नगर हो !
युग से मौन पड़ी जो वीणा
रागरहित धूसर श्रीहीना
तुम चाहो तो तान नवीना
उससे क्या न मुखर हो !
हों रवींद्र या त्यागराज हों
बिना सुरों के व्यर्थ साज हों
गायक जब सहृदय समाज हों
गायन तभी अमर हो
मेरे गीत तुम्हारा स्वर हो
क्या फिर मेरे शब्दों की भी धूम न नगर-नगर हो !

प्रशंसा के जल से सिंचित होते रहने से ही प्रतिभा का पौधा लहलहाता रहता है और सृजन को भी बल मिलता है। इतना कुछ लिखने के बाद भी मेरे हृदय में यह कलक बनी रही कि रवीन्द्रनाथ के समान यदि मैं भी बंगाल जैसे भावुक प्रदेश में जन्म लेता तो क्या मुझे भी उनके जैसी लोकप्रियता नहीं मिलती!

मैंने ३६५ गज़लें, जो प्रतिदिन एक ग़ज़ल के हिसाब से पूरे वर्षभर गाई जा सके और एक हज़ार से ऊपर गीत, जिन्हें कई वर्ष तक दुहराए बिना देवमंदिर में या रसिकमंडली में गाकर लाभ उठाया जा सके, इसी प्रत्याशा में लिखे थे।

निम्नलिखित गीत में यद्यपि रवीन्द्रनाथ का नाम एक ही स्थान पर आया है परन्तु पूरा गीत उन्हींको ध्यान में रखकर लिखा गया है –

कवि के मोहक वेश में
जन्म लिया होता यदि मैंने भावुक बंगप्रदेश में

. . .

जब मंदिर में जुड़े भक्तजन झाँझ-मृदंग बजाते
गा-गाकर निज इष्टदेव के चरित नाचते जाते
जब वे अपनी व्यथा सुनाते रवि ठाकुर के स्वर में
देवालय हिचकोले खाता करुणा के सागर में
तब मेरे भी स्वर लहराते उनके भावोन्मेष में
कवि के मोहक वेश में
जन्म लिया होता यदि मैंने भावुक बंग प्रदेश में!

सन् २००० के नवम्बर तक मुझे अपने गीतों के सृजन से पूरा संतोष हो गया। स्थान-स्थान पर सहृदय समाज में उनका गायन होने लगा और काव्य-मर्मज्ञों ने भी उन्हें गले लगा लिया, इससे प्रेरित होकर मैंने निम्लिखित गीत लिखा –

हे रवीन्द्रनाथ!
मैं भी चल सकूँगा अब तुम्हारे साथ-साथ
तुमने ज्यों गरल-दाह झेला

बदले में सुधाघट उँड़ेला
मैं भी तपता रहा अकेला
लिखते क्षण काँपे नहीं हाथ !
आयेगी मेरी भी बारी
जग को लगेगी कभी प्यारी
काँटों की झेल व्यथा भारी
मैंने जो माला दी गाँथ
गाता प्रेम-भक्ति के स्वरों में
पाऊँगा प्रतिष्ठा अमरों में
गूँजेगी तुम-सी ही घरों में
स्वरधारा यह भी पुण्यपाथ
हे रवीन्द्रनाथ !
मैं भी चल सकूँगा अब तुम्हारे साथ-साथ

इधर सन् २०१० में पुन: मेरी भावना ने जोर मारा और यद्यपि रवीन्द्रनाथ की महत्ता अस्वीकार करने में मैंने अपनी असमर्थता घोषित की है फिर भी निम्नलिखित गीत में यह अनुरोध गायक-समाज से कर ही दिया है कि वे अब मेरे गीतों को भी संगीतबद्ध करें और आनंद उठायें। मेरा यह नवीनतम गीत जो सन् २०१० में लिखा गया है, इसी भाव को अभिव्यक्त करता है –

नभ पर ऊँचा आसन मेरा
पर कुछ कवियों के तप सम्मुख झुक जाता इन्द्रासन मेरा
कालिदास की स्मृति धो डालूँ
भक्त बता तुलसी को टालूँ
पर रवींद्र से दृष्टि फिरा लूँ
कैसे यह माने मन मेरा !
पढ़े, सुने, गाये जग इनको
पर कब तक ढोए इस ऋण को !

सुने विविध रूपों में जिनको
नव सुर हैं, नव गायन मेरा
कितनी भी हो अमल धवलता
यदपि काल ग्रसकर ही टलता
पर मुझपर कुछ जोर न चलता
है कवित्व नित नूतन मेरा
नभ पर ऊँचा आसन मेरा
पर कुछ कवियों के तप सम्मुख झुक जाता इन्द्रासन मेरा

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जायगा कि सन् १९४१ से लेकर सन् २०१० तक किसी न किसी रूप में रवीन्द्रनाथ मुझ पर हावी रहे हैं। सन् १९४१ में 'माँझी से' कविता से मैंने जो आत्मविश्वास प्रकट किया था वही प्रकारांतर से ८६ वर्ष की आयु में पुनः नए गीत में व्यक्त हुआ है। इस बार मैंने सहृदय-समाज से निवेदन किया है कि वे उनके और उनके जैसे अन्य पुराने कवियों की तरह मुझे भी अपनाएँ। ●

पुस्तकों की तालिका तथा उनकी पृष्ठसंख्या

कविता	पुस्तक	पृष्ठ सं.
१. जनगण-मन	गीतवितान	२४९
२. आमार शोनार बांगला	स्वदेश	२४३
३. शिवाजी-उत्सव	उत्सर्ग	४८१
४. अशेष	कल्पना	३२१
५. भैरवी-गान	मानसी	८९
६. रावे उ प्रभाते	चित्रा	२६७
७. अभिसार	कथा	३४१
८. उर्वशी	चित्रा	२५०
९. केनो यामिनी ना जेते	गीतवितान	३२०
१०. मुखपाने चेये देखि	गीतवितान	३३३
११. स्वर्ग सेई विदाय	चित्रा	२५२
१२. दिनशेषे	चित्रा	२५७
१३. आवर्तन	उत्सर्ग	४६७
१४. असमाप्त	गीतांजलि	५१२
१५. याबार दिन	गीतांजलि	५११
१६. शाहजहाँ	बलाका	५३९
१७. असंभव – भालो	कणिका	२९०
१८. कर्तव्यग्रहण	कणिका	२९०
१९. भक्तिभाजन	कणिका	२९०
२०. कुटुंबिता	कणिका	२९०

२१. निजेर उ साधारणेर	कणिका	२९१
२२. एक दिन तूमि प्रिये	गीतवितान	३८७

२३. आत्मा की अमरता शेषलेखा
रवीन्द्र रचनावली, तृतीयखंड, कविता सं. (२) ९०१

२४. जन्मदिन शेषलेखा
रवीन्द्र रचनावली, तृतीयखंड, कविता सं. (१०) ९०७

२५. जीवनसत्य शेषलेखा
रवीन्द्र रचनावली, तृतीयखंड, कविता सं. (११) ९०७

२६. शान्तिपारावार शेषलेखा
रवीन्द्र रचनावली, तृतीयखंड, कविता सं. (१) ९०१

गुलाबजी के काव्य पर कुछ सम्मतियाँ

आप सचे धनी हैं तभी तो आपने वाणी को इतने अलंकार दिये हैं कि वे उसे राजरानी बना देते हैं।
–मैथिलीशरण गुप्त

अद्भुत-सी रचनायें जो कविता की कोटि में आसानी से गुलाब की तरह अपने दल खोल चुकी हैं, खुशबू से उन्मद, स्निग्ध कर देती हैं।
–निराला

मुक्तपंख कल्पना तथा गहन गंभीर अनुभूतियों का ऐसा अद्भुत परिपाक कम देखने को मिलता है।
–सुमित्रा नंदन पंत

गुलाबजी छायावाद-युग के कृती हैं, अत: उनकी रचना में तथ्य भाव-समुद्र की तरंगों के समान आते हैं।
– महादेवी वर्मा

मैं गुलाबजी को अपनी पीढ़ी का सर्वश्रेष्ठ कवि मानता हूँ। – पद्मभूषण डॉ. रामकुमार वर्मा

गुलाब तरुणाई तथा सौंदर्य का कवि है। यौवन की रसीली भावनायें अनायास ही उसके भावों में फूट पड़ती हैं।
– कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढ़ब बनारसी'

गुलाबजी नैसर्गिक कवि हैं, इसलिए उन्होंने जीवन और प्रकृति के सूक्ष्म संतुओं को समझा है, उन्हें अपने काव्य में उतारा है।
– रायकृष्णदास

आपकी प्रतिभा ने अनेक रूपात्मक विकास कर लिया है। आप हिंदी के परम समर्थ कवि हो गये हैं, इसमें किसी को किसी प्रकार का संदेह नहीं है।
– विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

आप अपनी शैली के सम्राट हैं।
– केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

रचनायें पढ़ने पर प्राय: ऐसा लगता है जैसे मेरे ही हृदय का एक टुकड़ा विधाता ने तुम्हारे अंदर रख दिया है।
– बच्चन

सचमुच गुलाब नहीं, आप तो खिले गुलाब हैं। आपकी विशेषता है निरंतरता, कि आप बिना मुरझाये खिलते रहे हैं। इस महक को मेरा प्यार-दुलार पहुँचे।
– कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

'शब्दों से परे' की कविताओं में गोचर से अगोचर की ओर एक प्रच्छन्न प्रस्थान है। कहीं-कहीं कवि का अन्तर्मन महाशून्य के द्वार पर दस्तकें देता हुआ दीख पड़ता है।
–डॉ. कुमार विमल

गुलाबजी के शिल्प में अकृत्रिम सौंदर्य है और अद्भुत चुस्ती के साथ बोलचाल का माधुर्य और प्रवाह है। विनय पत्रिका के तुलसी की तरह इनका कवि भी अपने प्रभु से साक्षात बातें करता सा प्रतीत होता है।
– विष्णुकान्त शास्त्री

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय
कोलकाता

ISBN 978-81-902967-8-